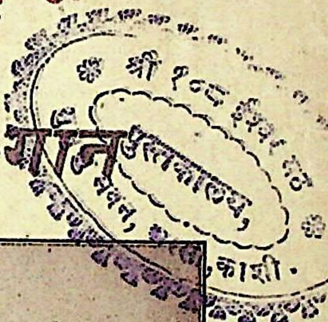




गन्धर्वराज का

"शिव-महिम्न-गान"



लेखक—
विन्ध्याचलप्रसाद वकील।
गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला।

सचित्र

श्रीपुष्पदन्ताचार्य-विरचित

श्रीशिवमहिम्न-स्तोत्र

(भाषाटीका सहित)

टीकाकार—

विन्ध्याचलप्रसाद वकील

गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला

प्रकाशक—

भक्ति-ग्रन्थमाला कार्यालय,

छपरा।

प्रथमावृत्ति] मकरसंक्रान्ति, १९९० [मूल्य ६ आना



मुद्रक—

सहादुरराम,

हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, नीचीबाग, बनारस सिटी।



निवेदन

त्वमेव त्वामलं वेत्तुं यदि वा त्वत्प्रसादभूः ।
भ्रमरः कीटमाकृष्टं स्वात्मानं किं न चानयेत् ॥

हे शंकर, आपको जानने के लिये या तो आप ही समर्थ हैं या जिसपर आप प्रसन्न हैं वह आपको जान सकता है; भृङ्ग कीट को ले आकर क्या अपना स्वरूप उसे नहीं दे देता? संसार में भगवान् को प्रसन्न करने का सबसे सरल उपाय स्तुति ही है। भक्तजन ही नहीं स्तुति रूपी नौका में बैठकर साधारण जन भी सहज ही संसार-सागर से पार हो सकते हैं। इसीलिये कहा गया है कि 'कीर्तयेत्कीर्त्यनाम्ना च स नूनं मोक्षमाप्नुयात्' अर्थात् कीर्तन करने योग्य नाम का कीर्तन करनेवाला प्राणी निश्चय मोक्ष को प्राप्त करता है। यद्यपि भगवान् का केवल एक नाम भी जपना महान फलदायक है फिर भी भगवान् को रिझाने के लिये महात्माओं ने अनेक स्तोत्रों की रचना की है।

यद्यपि भगवान् शंकर के अनेक स्तोत्र हैं तथापि मुमुक्षजनों के हृदय में जितना आदर इस 'महिम्नस्तोत्र' का देखा जाता है उतना अन्य स्तोत्रों का नहीं। इसीलिये इसके विषय में कहा गया है कि 'महिम्नो नापरा स्तुतिः' अर्थात् महिम्नस्तोत्र से बढ़कर कोई दूसरा स्तोत्र नहीं है। इसके श्लोक वेद मन्त्र की भाँति फलदायक माने जाते हैं। इनका महत्त्व और प्रभाव श्रुति की

ऋचाओं से किसी प्रकार न्यून नहीं माना जाता। इसकी गणना वेद की ही कोटि में करने के कारण श्रद्धालु भक्तजन इसका पाठ शिवरात्रि के अतिरिक्त और किसी रात्रि में नहीं करते। जिस प्रकार आध्यात्मिक ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता और वेदान्तदर्शन आदि पर संस्कृत में अनेक टीकाएँ और भाष्य आदि हुए हैं उसी प्रकार इस स्तोत्र की भी संस्कृत में कितनी ही टीकाएँ हुई हैं। संस्कृत के धुरन्धर विद्वानों तक ने इसपर टीकाएँ लिखी हैं। कितनी ही टीकाओं में इसका अर्थ शिव और विष्णु उभय पत्त में लगाने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है। कुछ विद्वानों ने इसे केवल विष्णुपरक ही लगाने का उद्योग किया है। इसका महत्त्व इसीसे प्रकट है कि प्रसिद्ध दार्शनिक और विद्वान् श्री मधुसूदन सरस्वती ने भी इसपर टीका लिखी है। उन्होंने इसका अर्थ शिव और विष्णु दोनों पत्तों में घटाया है। हिन्दी भाषा में भी इसकी अनेक टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, फिर भी हमें यह टीका क्यों प्रकाशित करनी पड़ रही है इसका कारण गन्धर्वराज के ही शब्दों में यह है कि 'पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः' अर्थात् भगवान् शकर के विषय में कौन अपनी वाणी का सदुपयोग नहीं करना चाहता; सभी लोग अपनी शक्ति और पहुँच के अनुसार देवदेव भगवान् शकर का गुणगान करना चाहते हैं, हम भी भगवान् का गुणगान करके अपनी वाणी को पवित्र करना चाहते हैं। इसलिये हमें इस विषय में और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

'महिम्नस्तोत्र के जितने संस्करण अब तक प्रकाशित हुए हैं उनमें श्लोकों की संख्या में अन्तर पाया जाता है। मधुसूदन सरस्वतीजी ने केवल ३१ श्लोकों पर टीका लिखी है। इसके जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उनमें सम्पादकों ने यह लिखा है कि मधुसूदनजी ने अन्य श्लोकों को सरल समझकर छोड़ दिया है। इस समय महिम्नस्तोत्र में कुल ४३ श्लोक पाये जाते हैं। शेष १२ श्लोकों में बत्तीसवें को छोड़कर अन्य श्लोक या तो 'महिम्न' के महत्त्व का वर्णन करते हैं या रचयिता के विषय में कुछ बतलाते हैं। इन श्लोकों के मूल-पुस्तककार द्वारा होने के विषय में लोगों ने सन्देह प्रकट किया है*। इसका कारण यह है कि मध्यप्रदेश के नीमाड जिले के ओंकारेश्वर नामक गाँव में अमरेश्वर महादेव के मन्दिर की दीवार पर विक्रम संवत् ११२० में परमारवंशी राजा उदयादित्य के राजत्वकाल में यह स्तोत्र खोदवाया गया था; उसमें केवल आदि के २१ ही श्लोक हैं। उस लेख में रचयिता का भी नाम नहीं दिया गया है। इस विषय में निश्चित रूप से कोई संमति दे देना कठिन है। पुष्पदन्ताचार्य के नाम से 'महिम्न' की प्रसिद्धि बहुत दिनों से है और पुस्तक के उपसंहार में जो श्लोक हैं उनमें इसी बात का कथन भी किया गया है। एक श्लोक में उस कथा का भी संकेत मिलता है जो इस स्तोत्र के निर्माण के विषय में

---

* द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृष्ठ २४७

प्रसिद्ध है । इस स्तोत्र का बत्तीसवाँ श्लोक बहुत प्राचीन है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं; क्योंकि तेरहवीं शताब्दी में भाषा-कवियों ने इसका अनुवाद करके अपने ग्रन्थों या रचनाओं में इसे रखा है। अन्य श्लोकों में कुछ ऐसे अवश्य हैं जिनकी एकाध बातें इस ओर संकेत करती हैं कि इसे रचयिता ने नहीं लिखा होगा, पीछे से किसी ने जोड़ दिया है; क्योंकि उसमें कवि की प्रशंसा है और कहीं-कहीं भूतकाल का प्रयोग भी है। एक बात यह ध्यान देने की अवश्य है कि इकतीसवें श्लोक के अन्त में एक प्रकार से 'इति' सी हो जाती है अथवा अधिक से अधिक बत्तीस तक ही मूल जान पड़ता है। पर हमें इस ऐतिहासिक छानबीन से उतना प्रयोजन नहीं है, विद्वान् लोग उसपर विचार करते रहें। हमें तो इसे साधारण जनता के लिये सरल बनाना है और इसे सबके हाथों तक पहुँचाने का उद्योग करना है। इसलिये हमारे लिये आवश्यक है कि हम इसमें प्रचलित सभी श्लोकों को दें। यहाँ पर लोगों को केवल इस विषय से परिचित कराने के लिये हमने इसकी चर्चा भी छेड़ दी है।

'शैव-पंचरत्न' में ५ वस्तुएँ हैं—१. शिवगीता, २. शिव-सहस्रनाम, ३. शिवमहिम्न, ४. शिवकवच और ५. व्यपोहन-स्तोत्र। इनमें से 'शिवगीता' के अतिरिक्त अन्य चारों रत्न अब 'भक्ति-ग्रंथ-माला' में गुँथ चुके। 'व्यपोहनस्तोत्र' हमारी ग्रन्थमाला से प्रकाशित 'शिव-भक्तमाल' के प्रथम संस्करण के उत्तरार्द्ध में दिया जा चुका है; शेष तीन अब प्रकाशित किये जा

रहे हैं। 'शिवगीता' निर्णयसागर और वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हो चुकी है। इन पंचरत्नों के पढ़ने और पाठ करने का अमोघ फल कहा गया है। श्रद्धालु भक्तों के चित्त के आह्लाद के लिये हमने ये सुन्दर कुसुम अपनी ग्रन्थमाला में गूँथे हैं।

शिवभक्त बाबू विन्ध्याचलप्रसादजी वकील, मोतीहारी ने पदच्छेद, अन्वय, भाषाटीका और हिन्दी-कविता में भावार्थ लिखकर मुझे वात्सल्य भाव से दिया था। इस दास ने भी उनकी आज्ञा पा इसे बालक भाव से ही देख-भालकर और काशी-निवासी पूजनीय श्रीमान् पं० विश्वनाथप्रसादजी मिश्र बी० ए०, साहित्यरत्न, साहित्यशास्त्री से संशोधन कराकर प्रकाशित किया है। इस अनुग्रह के लिये मैं उक्त दोनों सज्जनों का कृतज्ञ हूँ। यदि इसके द्वारा भक्तजनों को पढ़ने और अर्थ का ज्ञान प्राप्त करने में कुछ भी सरलता हुई और उन लोगों ने प्रेमपूर्वक इसे अपनाया तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा।

मकर-संक्रान्ति, १९९०
भक्ति-ग्रन्थमाला कार्यालय,
छपरा।

विनीत—
गौरीशंकर गनेड़ीवाला
छपरा (सारन)

शुद्धि-पत्र



श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
१	ममाप्येवः	ममाप्येषः
२	अविधत्ते	अभिधत्ते
१२	ताङ्गष्ठ	ताङ्गुष्ठ
१२	सीद्भव	सीद्भुव
१८	परत्रन्ता	परतन्त्राः



पुष्पदन्ताचार्य

इस स्त्रोत्र के रचनेवाले पुष्पदन्ताचार्य हैं, जो एक परम शिवभक्त गन्धर्वराज थे। इन्होंने भयंकर तप करके भगवान शिवजी को संतुष्ट किया * और प्रभास क्षेत्र † में 'पुष्पदन्तेश्वर' नामक शिवलिङ्ग स्थापित किया। उस शिवलिङ्ग का दर्शन कर के प्राणी जन्ममरण के बन्धन से छूट जाता है। पुष्पदन्त शिव की आराधना के लिये सुन्दर और सुगन्धित पुष्प लाने को नित्य एक राजा के उपवन में आकाश-मार्ग से उड़कर जाते और वहाँ से प्रातःकाल ही सर्वोत्तम पुष्प चुन लाते। उपवन के रक्षक पुष्प ले जानेवाले का बहुत पता लगाते, पर किसी प्रकार पता नहीं लगता था। राजा जब पूजा करने बैठता और अर्चना के लिये पुष्प न पाता तो उसे बहुत क्रोध आता और मालियों को बहुत दण्ड देता। बेचारे माली बहुत पता लगाने पर भी पता न पा सके। तब उन्होंने राजा के सामने जाकर कहा कि हे शरणागत-पालक महाराज! हम लोग रात-दिन उपवन में पहरा देते हैं, पर

---

* तेन तप्त्वा ततो घो ं तत्र लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥
तद्दृष्ट्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ (प्रभा० खं० अ० १४७, २)

† 'प्रभास' जूनागढ़ राज्य में है।

किसी प्रकार चोर का पता नहीं लगता। आप अन्नदाता हैं, जो चाहें सो करें। आप हम लोगों को चाहे मारें, चाहे पीटें, चाहे शूली पर चढ़ा दें।

मालियों के ऐसे आर्त वचन सुनकर राजा बहुत चिन्तित हुआ और उसने अपने सचिवों से सलाह की। सचिवों ने कहा कि महाराज फूल ले जानेवाला कोई अपूर्व शक्ति-शाली पुरुष है। ज्ञात होता है कि उसमें अन्तर्धान होने की शक्ति है। इसी कारण सब रक्षकों के सामने वह फूलों को तोड़ ले जाता है और कोई उसे पकड़ नहीं पाता। इसका एकमात्र यही उपाय है कि उपवन के चारों ओर शिवनिर्माल्य फैला दिया जाय। ज्यों ही वह पुरुष शिवनिर्माल्य लाँघकर बगीचे में घुसेगा उसी समय उसकी सब शक्ति नष्ट हो जायगी और वह रक्षकों को दृष्टिगोचर हो जायगा।

राजा ने मन्त्रियों की सलाह के अनुसार बगीचे के चारों ओर शिवनिर्माल्य फैलवा दिया। जब पुष्पदन्त उस उपवन में प्रवेश करने लगे तो शिवनिर्माल्य-लङ्घन से तत्काल उनकी अन्तर्धान होने की शक्ति नष्ट हो गयी और रक्षकों ने उन्हें पकड़ लिया। राजा इतने दिनों से कुपित तो था ही, बिना कुछ पूछ-ताछ किए ही उन्हें तुरन्त जेल में बन्द कर देने की आज्ञा दे

दी। राजा की आज्ञा के अनुसार वे तुरन्त जेल में बन्द कर दिये गये।

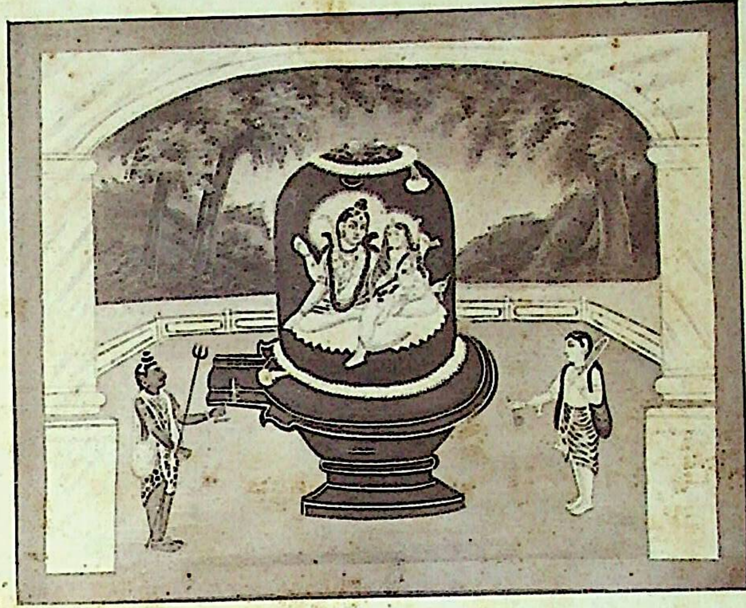
कारागार में बन्द हो जाने पर गन्धर्वराज अपने मन में अपनी शक्ति नष्ट होने का कारण सोचने लगे। बहुत ध्यान लगा कर विचार करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि मुझसे शिव-निर्माल्य के लाँघने का अपराध हुआ है। इसी कारण मेरी अन्तर्धान होने की शक्ति नष्ट हो गयी है। सर्वश्रेष्ठ देव शिव के अपराध का मार्जन शिवोपासना से ही हो सकता है। ऐसा निश्चय कर वे * भगवान् शिव की स्तुति करने लगे। उन्होंने सुमधुर श्लोकों द्वारा शक्तिपूर्ण हृदय से भगवान् आशुतोष की स्तुति की। इस 'महिम्नस्तोत्र' से आशुतोष भगवान् शंकर परम सन्तुष्ट हुए और वर देने के लिये आ उपस्थित हुए। उनके वर से पुष्पदन्त का पुष्पापहारजनित पाप दूर हो गया और वे कारागार से मुक्त हो गये। इस पुष्पदन्त-रचित 'महिम्नस्तोत्र' के प्रतिदिन पाठ करने से दरिद्र मनुष्य भी सम्पत्ति-सम्पन्न हो जाता है, आयु की वृद्धि होती है, सन्तान की प्राप्ति होती है। यश होता है और निष्काम पाठ करने से मनुष्य शिव की सारूप्य मुक्ति को पाता है इसका माहात्म्य इस प्रकार कहा गया है—

* पावनपुरी काशी में 'श्रीपुष्पदन्तेश्वर शिव' का मन्दिर बंगाली टोला में चौसट्ठी देवी के मन्दिर से उत्तर ओर है।

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमाँश्च ॥ ❀



❀ 'शिव-भक्तमाल', तैंतीसवाँ रत्न ।



ईश्वरं परमं तत्त्वमादिमध्यान्तवर्जितम् । आधारं सर्वलोकानामनाधारमविक्रियम् ॥

ॐ नमः शिवाय

* श्रीगणेशाय नमः *

श्रीशिवमहिम्न-स्तोत्र

(सटीक)



(दोहा)

जय महेश गिरिजा-रमण, गिरिजासुवन गणेश ।
जय गिरिजा जय शारदा, बिनवौं तोहिं हमेश ।।
शिव-महिम्न-स्तोत्र की, टीका लिखौं विचार ।
कृपा-दृष्टि करिकै सबै, देहु लगायहि पार ।।

(भुजङ्गप्रयात्)

निराकार निर्वान त्रैलोक्यदानी,
भवानीपती सच्चिदानन्द ज्ञानी ।
न वाणी सकै जासु लीला बखानी,
नमस्कार ताको करौं जोरि पाणी ।।

गिरा-ज्ञान-गोतीत जो वेद-गायो,
उमानाथ सो ब्रह्म व्यापी कहायो।
जिन्हैं चित्त के बीच योगीश ध्यावै,
सदा शीश ता ईश को दास नावै॥
गले मुण्ड की माल त्यों व्याल छाजै,
तथा भाल पै बालचन्दा विराजै।
जटा-बीच देवापगा-धार गाजै,
प्रभा अंग की देखिकै काम लाजै॥
चिता-भस्म लेपैं कटी व्याघ्र-छाला,
लिये शूल हैं तीन नैना विशाला।
करै है निहाला बजावै जो गाला,
कृपाला दयाला सदा बैलवाला॥

(श्लोक)

शिवं शिवार्धावयवं शिवं करं, हरं महामोहहरं हरिप्रियम्।
गौरं गुरुं गङ्गतरङ्गसङ्गमं, भवं भवाभावकरं भजाम्यहम्॥



(१)

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधिगृणन्
ममाप्येषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥

पदच्छेद

महिम्नः, पारं, ते, परं, अविदुषः, यदि, असदृशी, स्तुतिः, ब्रह्मादीनां, अपि, तत्, अवसन्नाः, त्वयि, गिरः, अथ, अवाच्यः, सर्वः, स्वमति, परिणामावधि, गृणन्, मम, अपि, एषः, स्तोत्रे, हर, निरपवादः, परिकरः ।

अन्वय-शब्दार्थ

हर* = हे दीन जनों के दुःख हरण करनेवाले !
ते = आपकी

---

* हर श्रुतिप्रसिद्ध नाम है—क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मनावीशते देव एकः ।
—श्वेताश्वतरोपनिषद् ।

[इस चराचर में एक देवदेव शिव परमात्मा ही अमृत और अक्षर (अविनाशी) है । वह जीव की अविद्या को हर लेता है । इसी से उसका नाम हर है ।]

अष्ट वारं हर इति जले मग्नो जपेन्नरः ।
अघमर्षणमेतैस्सर्वैः पापैः प्रमुच्यते ॥

महिम्नः	=	महिमा की
परं पारं	=	यथार्थ सीमा को
अविदुषः	=	न जाननेवाले पुरुषों की (की हुई)
स्तुतिः	=	स्तुति
यदि	=	यदि
असदृशी	=	अयोग्य है
तत्	=	तो (क्या आश्चर्य है ।)
ब्रह्मादीनां	=	(क्योंकि) ब्रह्मादि सर्वज्ञों की
अपि	=	भी
गिरः	=	गुणकथन-रूप वाणी
त्वयि	=	आपके विषय में
अवसन्ना	=	अयोग्य है। (क्योंकि वे भी आप के परिमाण की सीमा को नहीं जानते हैं)
अथ	=	इसके अनन्तर
स्वमति	=	अपनी-अपनी बुद्धि की
परिणामावधि	=	पहुँच तक (यदि)

[जल में प्रविष्ट होकर आठ बार 'हर' ऐसा पापनाशक मंत्र जपने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।]

'आहर', 'प्रहर' इस तरह आखेट में अज्ञात 'हर' नाम के उच्चारण के माहात्म्य से राजा इन्द्रसेन को शिव के दूत कैलास को ले गये और वे 'चण्ड' नाम से भगवान के गण हो गये।

(देखिये, 'शिव-भक्तमाल', रत्न १)

गृणन्	=	स्तुति करते हुए
सर्वः	=	सब लोग
अवाच्यः	=	निर्दोष हैं (तो)
स्तोत्रे	=	इस स्तोत्र में
मम	=	मेरा
अपि	=	भी
एषः	=	यह
परिकरः	=	उद्योग
निरपवादः	=	अपवाद-रहित है।

भावार्थ–(कवित्त)

अकल अनीह निराकार निर्विकार हर,
महिमा अपार तेरी सब ही पुकार कहै।
वानी ब्रह्म आदि की न पूरन सकै बखानि,
मानुस कथन थोरो कैसे योग्यता लहै ॥
ताहू पै अनेक जन मति-अनुसार यश,
गावत तिहार पै विकार कोऊ न गहै।
अस जिय जानि हौंहूँ कछु गुन-गान करौं,
आश धरौं मेरीहू या विनै अदोष रहै ॥

---

(२)

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः॥

पदच्छेद

अतीतः, पन्थानं, तव, च, महिमा, वाङ्मनसयोः, अतद्व्यावृत्त्या, यं, चकितं, अभिधत्ते, श्रुतिः, अपि, सः, कस्य, स्तोतव्यः, कतिविध, गुणः, कस्य, विषयः, पदे, तु, अर्वाचीने, पतति, न, मनः, कस्य, न, वचः।

अन्वय-शब्दार्थ

(हे ! हर)

तव = (आपके अनन्त तथा सर्वधर्म-रहित होने के कारण) आपकी (सगुण और निर्गुण)

महिमा = महिमा

वाङ्मनसयोः * = वाणी एवं मन के

* न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमः।
—केनोपनिषद्।

पन्थानं	=	पन्थ से
अतीतः	=	परे है
च	=	और
यं	=	जिसके विषय में
श्रुतिः	=	वेद-वाणी
अपि	=	भी
अतद्व्यावृत्त्या	=	अनिश्चित रूप से
चकितं	=	भयभीत होकर
अभिधत्ते	=	अपना तात्पर्य प्रतिपादन करती है । *
सः	=	वह
कस्य	=	किसके

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ —कठोपनिषद् ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । —तैत्तिरीयोपनिषद् ।

* वेद का कथन है—"मनसहित वाणी आदि इन्द्रिय उस परमात्मा को न पाकर लौट आते हैं ।" यदि कहा जाय कि वाणी का अविषय होने से श्रुति की भी प्रमाणता न रहेगी, तो इस शङ्का के समाधान में कहते हैं कि श्रुति (अपौरुषेयी=पुरुष से न बनाई हुई वेद-वाणी) भी भयभीत होकर (अतद्व्यावृत्त्या) आपके विषय में अपना तात्पर्य प्रतिपादन करती है । सगुण-पक्ष में कुछ अयुक्त वर्णन न हो जाय और निर्गुण-पक्ष में स्वप्रकाश परमात्मा अन्य के अधीन प्रकाशवाला न हो जाय । यही श्रुति के भय का आकार है ।

स्तोतव्यः	=	स्तुति करने योग्य है (क्योंकि)
कतिविध	=	कितने प्रकार के (अर्थात् अनन्त प्रकार के)
गुणः	=	आपके गुण हैं
कस्य	=	किसके (क्या)
विषयः	=	विषय हैं (कोई नहीं जानता)(फिर भी)
तु	=	आपके
अर्वाचीने	=	नवीन भक्तों के अनुग्रहार्थ लीलामय शरीरधारी के
पदे	=	विषय में
कस्य	=	किसका
मनः	=	मन (और)
कस्य वचः	=	किसकी वाणी
न पतति	=	नहीं पहुँचती है।

भावार्थ—(कवित्त)

महिमा तिहारी त्रिपुरारी अति भारी,

मन वाणीहूँ के मारग ते न्यारी कहियत है।

वेदहूँ चकित होय जाको योंहीं त्योंहीं भावै,

कहा भला ताहि कोऊ बरनि सकत है॥

केते भाँति के हैं तेरे गुण गुणागार शिव,

पुनि वाको विषै सोऊ बूझि न परत है।

जग के पदारथ में सबकी प्रवृत्ति अहै,
अगम तिहारो पद शम्भु सुनियत है ॥

---

(३)

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
ममत्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥

पदच्छेद

मधुस्फीता, वाचः, परमं, अमृतं, निर्मितवतः, तव, ब्रह्मन्, किं, वाक्, अपि, सुरगुरोः, विस्मय, पदं, मम, तु, एतां, वाणीं, गुणकथन, पुण्येन, भवतः, पुनामि, इति, अर्थे, अस्मिन्, पुरमथन, बुद्धिः, व्यवसिता ।

अन्वय-शब्दार्थ

ब्रह्मन्	=	हे व्यापक सर्वगुणातीत ! (आप तो स्वयं)
परमं	=	सर्वोत्तम
अमृतं	=	अमृत के समान

मधुस्फीता	=	मधुर रस से परिपूर्ण परब्रह्म-पद देने में समर्थ ऐसी
वाचः	=	वेद-वाणी के
निर्मितवतः	=	रचनेवाले हैं,
तव	=	आपके लिये
सुरगुरोः	=	हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) की
वाक्	=	की हुई स्तुति
किं	=	क्या
विस्मय	=	आश्चर्यजनक
पदं	=	हो सकती है । (अभिप्राय यह है कि जब हिरण्यगर्भ आदि की स्तुति भी आपके कौतुक का हेतु नहीं है तो मेरी स्तुति की तो बात ही क्या है । अब शङ्का होती है कि यदि ऐसा ही है तो इस की गई स्तुति से क्या ? इस शङ्का के समाधान में कहते हैं ।)
पुरमथन	=	हे पुरारि !
भवतः	=	आपके
गुणकथन	=	गुणों के कीर्तन के
पुण्येन	=	पुण्य से
एतां	=	मैं अपनी इस तुच्छ
वाणीं	=	वाणी को

पुनामि	=	निर्मल करता हूँ,
इति	=	इस कारण
तव	=	आपके
अस्मिन्	=	इस (स्तुति) के
अर्थे	=	विषय में
मम	=	मेरी
बुद्धिः	=	बुद्धि
व्यवसिता	=	तत्पर हुई है अर्थात् लग गई है ।

भावार्थ-(कवित्त)

मधु से अधिक मीठी परम अमिय-सम,
वाणी (वेद) के रचैया आप ब्रह्म जग-करतार।
वाक्य देव-गुरुहूँ के कैसेहूँ मधुर होयँ,
आप ताके मोह-वश कबहूँ न होनहार ।।
यदि कहौ काहे तू करत श्रम, कारण ये,
तेरे गुण-कथन को पुण्य जग में अपार ।
तातें निज वाणी को पुनीत हौं करन चहौं,
याही तें सुयश भाखिबे को कियो है विचार ।।

(४)

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीम्
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥

पदच्छेद

तव, ऐश्वर्यं, यत्, तत्, जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्, त्रयी, वस्तु, व्यस्तं, तिसृषु, गुणभिन्नासु, तनुषु, अभव्यानां, अस्मिन्, वरद, रमणीयां, अरमणीं, विहन्तुं, व्याक्रोशीं, विदधत, इह, एके, जड़धियः ।

अन्वय-शब्दार्थ

वरद	=	हे भक्तजनों की मनःकामना पूरी करनेवाले !
इह	=	इस संसार में
एके	=	कोई-कोई (कुछ)
जड़धियः	=	मतिमन्द (महामूर्ख ऐसे भी हैं जो)
त्रयीवस्तुव्यस्तं	=	वेदत्रय-सार-रूप

तिसृषु गुणभिन्नासु	=	सत्त्व, रज, तम गुणों से पृथक् होकर
तनुषु	=	(ब्रह्मा, विष्णु, महेश के) त्रिरूपों में प्रकटित (तथा)
जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्	=	जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली
यत्	=	जो
तव	=	आपकी
ऐश्वर्यं	=	ईश्वरता है
तत् विहन्तुं	=	उसका खण्डन करने के लिये (तत्पर हैं तथा)
व्याक्रोशीं विदधत	=	आक्षेपपूर्वक निन्दा करते हैं
अस्मिन्	=	(जो इन समस्त गुणों से परिपूर्ण) आपके ऐश्वर्य में (श्रद्धा रखनेवालों के लिये)
अरमणीं	=	मनोहारिणी नहीं है (परन्तु)
अभव्यानां	=	नीच बुद्धिवाले पापनिष्ठ लोगों को
रमणीयाम्	=	बड़ी प्यारी है ।

भावार्थ-(कवित्त)

ईश्वरता है महान तेरी शम्भु भगवान,
जग को रचहु पालौ नाश करि डारते।
सार तिहुँ वेदन के सत्त्व रज तम गुण,
तीन करि भिन्न जो शरीर तीन धारते॥
केते मन्दबुद्धि ताके खण्डन करन हेत,
निन्दा के अनेक व्यंग-वचन उचारते।
मूढ़न को यद्यपि सो प्यारो लगै तौहूँ,
तेरे गुणगण बीच अहै अप्रिय विचारते॥

---

(५)

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः॥

पदच्छेद

किं, ईहः, किं, कायः, स, खलु, किं, उपायः, त्रिभुवनं, किं, आधारः, धाता, सृजति, किं, उपादानः, इति च,

अतर्क्य, ऐश्वर्ये, त्वयि, अनवसरदुस्थः, हतधियः, कुतर्क, अयं, कांश्चित्, मुखरयति, मोहाय, जगतः ।

अन्वय–शब्दार्थ

सः	=	वह
धाता	=	सृष्टिकर्ता ईश्वर
किमीहः	=	किस चेष्टा से
किंकायः	=	किस शरीर से
किमुपायः	=	किस उपाय से
किमाधारः	=	किस आधार पर
च	=	और
किमुपादानः	=	किस सामग्री से
त्रिभुवनं	=	तीनों लोकों को
सृजति	=	रचता है
इति	=	ऐसा
अयं	=	यह
कुतर्कः	=	कुतर्क
त्वयि	=	आपके
अतर्क्यैश्वर्ये	=	तर्क-रहित ऐश्वर्य के विषय में
अनवसर दुस्थः	=	कोई अवकाश न होने के कारण
कांश्चित्	=	बहुत से
हतधियः	=	मन्दबुद्धि लोगों को

जगतः मोहाय = संसार के मोहजाल में डालने के लिये
मुखरयति = वाचाल बना रहा है ।

भावार्थ—(कवित्त)

तर्क के न योग जौन प्रभुता तिहारी तहाँ,
मन्दबुद्धिवारो कोऊ शंका यों करत है ।
पूछत, विधाता कहाँ बैठि कौन देह धरि,
कैसे कौन वस्तु लै त्रिजग सिरजत है ॥
याही भाँति विविध कुतर्क को करत जौ पै,
तर्क करिबे को सावकाश न लहत है ।
केवल जगत को भरम–बीच डारन कौं,
मोह–वश होय ऐसे बैन सो कहत है ॥

---

(६)

अजन्मानो लोकाः किमवयवन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥

पदच्छेद

अजन्मानः, लोकाः, किं, अवयववन्तः, अपि, जगतां, अधिष्ठातारं, किं, भवविधिः, अनादृत्य, भवति, अनीशः, वा, कुर्यात्, भुवनजनने, कः, परिकरः, यतः, मन्दाः, त्वां, प्रति, अमरवर, संशेरते, इमे।

अन्वय-शब्दार्थ

अमरवर	=	हे देवों में श्रेष्ठ !
अवयववन्तः	=	समस्त अंगों से परिपूर्ण रहने पर
अपि	=	भी
लोकाः	=	चौदहों लोक
किं	=	क्या
अजन्माः	=	जन्मरहित हैं ?
किं	=	क्या
भवविधिः	=	सृष्टि की रचना
जगतां	=	जगत में
अधिष्ठातारं	=	जगत के कर्ता के
अनादृत्य	=	बिना
भवति	=	हो सकती है ?
वा	=	अथवा
अनीशः	=	ईश्वर से भिन्न कोई जीव

कुर्यात् = संसार की रचना करनेवाला हो तो
भुवनजनने = संसार के रचने के लिये
(उसके पास)
कः = क्या
परिकरः = सामग्री है ? (क्योंकि वह जीव तो अपने शरीर की रचना को भी नहीं जानता वह विचित्र चौदहों भुवनों की रचना कैसे कर सकता है ? अतः ईश्वर ही जगत की रचना करता है।)
यतः = तो भी
इमे = ये
मन्दाः = मूर्ख मतिमन्द लोग
त्वां प्रतिः = आपके विषय में
संशेरते = संदेह करते हैं।

भावार्थ-(कवित्त)

अंगन सहित सबै लोक देखियत जौन,
देववर ! कहा सो अजन्म ह्वै सकत है।
जगती की रचना विविधि विधि पेखि ताको,
सिरजनहार कोऊ मानिबो परत है॥

यदि कहौ बिना ईश जग को उदय होत,

शंका जो करत तासों यहै पूछियत हैं।

जग के रचन हेत कौन-कौन वस्तु अहै,

सोई नाहिं काहे तू प्रचारि कै कहत है॥

---

(७)

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति

प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

पदच्छेद

त्रयी, सांख्यं, योगः, पशुपतिमतं, वैष्णवं, इति, प्रभिन्ने, प्रस्थाने, परं, इदं, अदः, पथ्यं, इति, च, रुचीनां, वैचित्र्यात्, ऋजु, कुटिल, नाना, पथ, जुषां, नृणां, एकः, गम्यः, त्वं, असि, पयसां, अर्णव, इव।

अन्वय-शब्दार्थ

हे देवों में श्रेष्ठ !

त्रयी	=	तीनों वेद,
सांख्यं	=	सांख्यशास्त्र,
योगः	=	पतंजलि का योगशास्त्र
पशुपतिमतं	=	शैवमत,
वैष्णव	=	वैष्णवमत,
इति	=	इस प्रकार से
प्रस्थाने	=	गमन योग्य मार्ग
प्रभिन्ने	=	भिन्न भिन्न (हैं ।) (कोई कहता है,)
इदं	=	यह (हमारा मत)
परं	=	सर्वश्रेष्ठ है
च	=	और (कोई कहता है,)
अदः	=	यही (हमारा मत)
पथ्यं	=	मार्ग (ठीक) है
इति	=	इस प्रकार (अपनी-अपनी)
रूचीनां	=	रुचियों की
वैचित्र्यात्	=	विचित्रता से
ऋजु	=	सीधे
कुटिल	=	टेढ़े
नानापथ	=	अनेक मार्ग (पर)
जुषां	=	चलनेवाले

नृणां	=	मनुष्यों के
पयसां	=	जल के (नदियों के) लिये
अर्णव इव	=	समुद्र-समान
त्वं	=	आप
एकः	=	एक (ही)
गम्यः	=	पहुँचने के स्थान
असि	=	हैं।

भावार्थ—(कवित्त)

तीन वेद सांख्य योग शैव अरु भागवत,
नाना मत जहाँ लगि जगत मझार हैं।
सकल मतावलम्बी हेत ताही एक ठौर,
भिन्न मत-कारण ते पृथक विचार हैं॥
रुचि की विचित्रता से सूधो टेढ़ो मार्ग चलि,
कहैं सब ही सों मेरो मत सुखसार है।
जैसे जल सरिता को सागर अधार तैसे,
सब मतधारिन को शम्भु तू अधार है॥

---

(८)

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥

पदच्छेद

महोक्षः, खट्वाङ्गं, परशुः, अजिनं, भस्म, फणिनः, कपालं, च, इति, इयत्, तव, वरद, तन्त्रोपकरणं, सुराः, तां, तां, ऋद्धिं, विदधति, भवत्, भ्रू, प्रणिहितां, न, हि, स्व, आत्मारामं, विषय, मृगतृष्णा, भ्रमयति ।

अन्वय-शब्दार्थ

वरद	=	हे वर देनेवाले ! (यद्यपि आप परिपूर्ण परमेश्वर हैं तथापि)
महोक्षः	=	बूढ़ा बैल,
खट्वाङ्गं	=	खाट की पाटी,
परशुः	=	कुठार,
अजिनं	=	(व्याघ्र-) चर्म,
भस्म	=	भस्म,
फणिनः	=	सर्प

च	=	और
कपाल	=	मनुष्य की खोपड़ी
इति	=	इस प्रकार
इयत्	=	इतनी ही
तव	=	आपकी
तन्त्रोपकरणं	=	गृह-सामग्री है (तथापि)
सुराः	=	देवता-गण
भवद्भ्रूप्रणिहितां	=	आपके कटाक्ष-संकेत मात्र से पाई हुई
तां तां	=	भाँति भाँति की
ऋद्धिं	=	सम्पत्तियाँ
विदधति	=	भोगते हैं । (पर आप स्वयं क्यों नहीं भोगते)
हि	=	क्योंकि
विषयमृगतृष्णा	=	विषयरूपी मृगतृष्णा (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द-रूपी मृगतृष्णा)
स्वात्मारामं	=	चिदानन्दघन स्वात्मा में रमण करने वाले को
न	=	नहीं
भ्रमयति	=	भ्रमा सकती (मोह में नहीं डाल सकती) है ।

भावार्थ-(कवित्त)

वरद तिहारी एती घर-सम्पदा हैं सारी,
बूढ़ो एक बैल अरु परशु कपाल है।
खाटन की पाटी लिये भस्म को लपेटे अंग,
भूषन भुजंग ओढ़िबे को मृगखाल है॥
पर तेरी भृकुटि-प्रसाद सों सकल सुर,
नाना भाँति ऋद्धि सिद्धि भोगत विशाल हैं।
आपने स्वरूप में रमण तू करत यातें,
झूठे जग-विषै को न तोहि भ्रमजाल है॥

---

(९)

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥

पदच्छेद

ध्रुवं, कश्चित्, सर्वं, सकलं, अपरः, तु, अध्रुवं, इदं, परः, ध्रौव्याध्रौव्ये, जगति, गदति, व्यस्त, विषये, समस्ते, अपि, एतस्मिन्, पुरमथन, तैः, विस्मित, इव, स्तुवन्, जिह्रेमि, त्वां, न, खलु, ननु, धृष्टा, मुखरता ।

अन्वय-शब्दार्थ

पुरमथन	=	हे त्रिपुरारि !
कश्चित्	=	कोई (अर्थात् सांख्य और पातञ्जल इत्यादि दर्शनों को माननेवाला)
इदं सर्वं	=	इस सचराचर समस्त जगत को
ध्रुवं	=	नित्य
गदति	=	कहता है,
अपरः	=	कोई (अन्य) (बौद्ध)
तु	=	वैसे ही
इदं सकलं	=	इस सब जगत को
अध्रुवं	=	अनित्य (कहता) है, (और)
परः	=	कोई (तार्किक)
*ध्रौव्याध्रौव्ये	=	नित्यानित्य दोनों कहता है ।

* तार्किक लोग आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन और पृथ्वी आदि के परमाणुओं को नित्य मानते हैं और शेष द्रव्यों को अनित्य । ईश्वर केवल अनित्य पदार्थों की उत्पत्ति और नाश में समर्थ है, न कि नित्य पदार्थों की भी । यही तृतीय पक्ष है ।

एतस्मिन्	=	इस तरह (की ये)
समस्ते	=	सब बातें
अपि:	=	भी
जगति	=	संसार के
व्यस्तविषये	=	विपय में (ठीक नहीं हैं) ।
तैः	=	उनसे (सब दार्शनिकों के विचारों से मानो
विस्मित्	=	चकित
इव	=	सा (होकर मैं)
त्वां	=	आपकी
स्तुवन्	=	स्तुति करता हुआ
जिह्रेमि	=	लज्जित हो रहा हूँ ।
ननु	=	अहो
खलु	=	निश्चय करके
मुखरता	=	वाचालता
न धृष्टा	=	धृष्ट नहीं है (अर्थात् धृष्ट ही है। भाव यह है कि भिन्न-भिन्न मत-वालों की सिद्धान्त-शैली को देखकर मैं तो आश्चर्य में पड़ गया हूँ, इसी से आपकी स्तुति करने में लज्जित हो रहा हूँ। फिर भी मेरा बकवादीपन ढिठाई किये बिना नहीं मानता) ।

भावार्थ–(कवित्त)

या समस्त जग कोऊ अचल बखानत है,
कोऊ तो चलायमान गायकै सुनावतो।
कोऊ अविनाशी नाशवान दोऊ भाखै, सुनि
अटपटी बातैं ते अचम्भो मोहि आवतो॥
यातें पुरमथन तिहारे गुण-गावन में,
लाज मोंहि आवै भ्रम टरै न टरावतो।
तौहूँ वाक्य-शक्ति मेरी अहै बड़ी ढीठ ताहि,
बिनु यश भाखे मौन राखे न सोहावतो॥

---

(१०)

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमलस्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश य-
त्स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति॥

पदच्छेद

तव, ऐश्वर्यं, यत्नात्, यत्, उपरि, विरिञ्चिः, हरिः, अधः, परिच्छेत्तुं, यातौ, अन्, अलं, अनलस्कन्धवपुषः, ततः, भक्तिश्रद्धाभरगुरु, गृणद्भ्यां, गिरिश, यत्, स्वयं, तस्थे, ताभ्यां, तव, किं, अनुवृत्तिः, न, फलति ।

अन्वय-शब्दार्थ

गिरिश	=	हे कैलासवासी शिवजी !
तव	=	आपकी
अनिलस्कन्धवपुषः	=	तेजःपुञ्ज मयी मूर्ति के
ऐश्वर्यं	=	ऐश्वर्य (की अन्तिम सीमा) का
यत्नात्	=	यत्नपूर्वक
परिच्छेत्तुं	=	निश्चय करने के लिये
उपरि	=	ऊपर (आकाश) की ओर
विरिञ्चिः	=	ब्रह्माजी (और)
अधः	=	नीचे (पाताल) की ओर
हरिः	=	विष्णु महाराज
यातौ	=	गये, (परन्तु आपका पार पाने में)
अनलं	=	समर्थ नहीं हुए ।
ततः	=	पश्चात्
भक्तिश्रद्धाभरगुरु	=	अतिशय भक्ति (शारीरिक सेवा) और

		श्रद्धा (आस्तिक्य बुद्धि, मानसी सेवा) से
गृणद्भ्यां	=	(आपकी) स्तुति करते हुए
ताभ्यां	=	उन दोनों के सामने
स्वयं तस्थे	=	अपने अनुग्रह-वश आप स्वयमेव प्रकट हुए।
तव	=	आपकी
अनुवृत्तिः	=	सेवा
किं न फलति	=	क्या फल नहीं देती ? (अर्थात् सभी फलों को देती है, आपके साक्षात्कारपर्यन्त फलों को देती है)।

भावार्थ—(कवित्त)

विटप-अकार तेरो वपुष अपार, जाकी
शाखा पाँच पावक प्रयंत सब गायऊ ।
ताहि के विभव को ठिकानो लेन हेत चले,
यत्न कै विरंचि वहु व्योम को सिधायऊ ॥
विष्णु भगवानहूँ पताल को पयान कीन्हो,
खोजि खोजि हारे तबै विनती सुनायऊ ।
होय कै प्रसन्न तुम तिन्ह सम आप मिले,
भजत तुम्हैं जो सो अवश्य तुम्हैं पायऊ ॥

(११)

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्॥ *

पदच्छेद

अयत्नात्, आपाद्य, त्रिभुवनं, अवैरव्यतिकरं, दशास्यः, यत्, बाहून्, अभृत, रणकण्डूपरवशान्, शिरः, पद्मश्रेणी, रचित, चरणाम्भोरुहबलेः (चरण अम्भोरुह बलेः), स्थिरायाः, त्वद्भक्तेः, त्रिपुरहर, विस्फूर्जितं, इदम्।

अन्वय-शब्दार्थ

त्रिपुरहर	=	हे त्रिपुरारि !
दशास्यः	=	दशमुख (रावण) ने
यत्	=	जो
अयत्नात्	=	अनायास
त्रिभुवनं	=	तीनों लोकों को
अवैरव्यतिकरं	=	शत्रुओं से रहित
आपाद्य	=	करके

* देखिये 'शिव-भक्तमाल,' दैत्यखण्ड—छब्बीसवाँ रत्न।

रणकण्डूपरवशान्	=	संग्राम की खुजली के वश में रहनेवाली (सदा संग्राम चाहनेवाली)
बाहून्	=	भुजाओं को
अभृत	=	धारण किया था
इदं	=	और जो (भक्ति के वश रावण ने)
शिरः	=	(अपने) मस्तक रूपी
पद्मश्रेणी	=	कमल की माला को
रचित	=	रच रचकर
चरणाम्भोरुह	=	आपके चरण-कमलों में
बलेः	=	भेंट किया था
त्वत्	=	(वह) आपकी
स्थिरायाः	=	अचल
भक्तेः	=	भक्ति का
विस्फूर्जितम्	=	प्रत्यक्ष प्रभाव था।

भावार्थ-(कवित्त)

रावण सुरारि बिनु यत्न किये भारी, शत्रु-
रहित प्रचारि तीन भुवन कै डारेऊ।
बाहु खुजलात प्रतिभट्ट पायो जात नाहिं,
लंक में निशंक है अकंटक सिधारेऊ॥

बनो सो बनाव शंभु भजन-प्रभाव तेरे,

लोक बीच ख्यात भयौ ग्रंथन उचारेऊ।

जब निज हाथ काटि आपनी सो माथ-माल,

गूथि-गूथि तेरे पद-पंकज पै धारेऊ ॥

---

(१२)

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥

पदच्छेद

अमुष्य, त्वत्, सेवा, समधिगतसारं, भुजवनं, बलात्, कैलासे, अपि, त्वत् , अधिवसतौ, विक्रमयतः, अलभ्या, अपि, अलस, चलित, शिरसि, प्रतिष्ठा, त्वयि आसीत्, ध्रुवं, उपचितः, मुह्यति, खलः ।

अन्वय-शब्दार्थ

(हे भगवन् !)

अमुष्य	=	उस (रावण) ने
त्वत्	=	आपकी
सेवा	=	सेवा से प्राप्त
समधिगतसारं	=	पूर्ण बल पाए हुए
भुजवनं	=	भुजसमूह से
बलात्	=	बरजोरी (करके)
त्वत्	=	आपके
अधिवसतौ	=	निवासस्थान
कैलासे	=	कैलास पर
अपि	=	भी
विक्रमयतः	=	बलपूर्वक पराक्रम दिखलाया (किन्तु)
त्वयि	=	आपके
अलस	=	साधारणतः
अंगुष्ठ	=	(पैर के) अँगूठे के
शिरसि	=	कोर (अग्रभाग) के
चलित	=	चलाने से (उसका)
पाताले	=	पाताल में
अपि	=	भी
प्रतिष्ठा	=	स्थित रहना
अलभ्या	=	कठिन हो गया ।

उपचितः = यह बात निश्चय है कि
खलः = खल पुरुष (समृद्ध होकर)
ध्रुवं = अवश्य
मुह्यति = मोह को प्राप्त हो जाता है अर्थात् किए हुए उपकार को भी भूल जाता है।

भावार्थ-(कवित्त)

शम्भु भगवान सेवा तेरी ही महान करि,
भारी वलवान या जहान भयो लंकराय।
करि अभिमान आपको निवास-थल तुंग,
भूधर. कैलासहुँ भुजान पै लयो उठाय॥
ताको दाप दूरि करिवे को आप सहजहि,
गिरि को अँगुष्ट-कोर ही तें जो दयो दबाय।
अति बिलखायो पतालहू न ठहरायो,
बाढ़त जे खल ते गिरत अंत इतराय॥

---

(१३)

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः॥

पदच्छेद

यत्, ऋद्धिं, सुत्राम्णः, वरद, परम, उच्चैः, अपि, सतीं, अधः, चक्रे, बाणः, परिजन, विधेय, त्रिभुवनः, न, तत्, चित्रं, तस्मिन्, वरिवसितरि, त्वत्, चरणयोः, न, कस्यापि, उन्नत्यै, भवति, शिरसः, त्वयि, अवनतिः।

अन्वय-शब्दार्थ

वरद	=	हे वर देनेवाले !
परिजन	=	सेवक के
विधेय	=	समान
त्रिभुवनः	=	यह त्रिभुवन जिसके अधीन है
बाणः	=	ऐसे बाणासुर ने
सुत्राम्णः	=	देवराज इन्द्र की
परमोच्चैः	=	परमोत्कृष्ट
ऋद्धि सतीं	=	सम्पत्ति को

अपि	=	भी
अधश्चक्रे	=	तिरस्कृत कर दिया ।
तत्	=	यह
त्वत्	=	आपके
चरणयोः	=	चरणों में
वरिवसितरि	=	प्रणाम करनेवाले
तस्मिन्	=	उस (वाणासुर) के लिये
चित्रं न	=	(कोई) आश्चर्यजनक वात न थी क्योंकि
त्वयि	=	आपके लिये
शिरसः	=	मस्तक
अवनतिः	=	नवाने से
कस्यपि	=	किसकी
उन्नत्यैः	=	उन्नति
न भवति	=	नहीं होती है अर्थात् सभी की उन्नति आपकी सेवा से होती है* ।

---

* 'मधुसूदनजी' ने इस प्रकार अर्थ लिखा है—"त्वच्चरणयोर्वरिवसितरि नमस्कर्तरि इन्द्रसंपत्तेरप्यधःकरणं त्वन्नमस्कारस्य पर्याप्तफलं किंत्वेकदेशमात्रमित्याह । व कस्या इति । त्वयि विषये शिरसो याऽवनतिर्नमस्क्रिया सा कस्या उन्नत्यै न भवति। अपि तु सर्वामेवोन्नतिं मोक्षपर्यन्तां जनयितुं समर्था भवत्येवेत्यर्थः ।"

लोकोपकारार्थ हलाहल-पान



अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ॥
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥

भावार्थ-(कवित्त)

भूमि पै महान वलवान भयो बाणासुर,
आपने अधीन तीन भौन करि डारेऊ।
पुनि निज वैभव विशेष तें सुरेशहूँ की,
भारी सम्पदा को अति नीच अवधारेऊ॥
कछु न अचम्भौ सब सुख है सुलभ ताको,
हिय में जो तेरे चरणाम्बुज सम्हारेऊ।
वरद तिहारे प्रति सीस जो झुकायो भुव,
उन्नति को पायो लोक सुयश उचारेऊ॥

---

(१४)

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः॥

पदच्छेद

अकाण्ड, ब्रह्माण्ड, क्षय, चकित, देव, असुर, कृपा, विधेयस्य, आसीत्, यः, त्रिनयन, विषं, संहृतवतः, सः, कल्माषः, कण्ठे, तव, न, कुरुते, न, श्रियं, अहो, विकारः, अपि, श्लाघ्यः, भुवन, भय, भङ्ग, व्यसनिनः ।

अन्वय-शब्दार्थ

त्रिनयन	=	हे त्रिलोचन !
अकाण्ड	=	अचानक
ब्रह्माण्ड	=	ब्रह्माण्ड के
क्षय	=	क्षय की सम्भावना से
चकित	=	घबराये हुए
देवः	=	देवतागण (और)
असुरः	=	असुरगण के ऊपर
कृपाविधेयस्य	=	कृपा करके
विषं	=	कालकूट विष को
संहृतवतः	=	पी लेनेवाले
तव	=	आपके
कण्ठे	=	कण्ठ में
सः	=	वह (जो)

कल्माषः	=	कालिमा
आसीत्	=	उत्पन्न हो गई
सः	=	वह
श्रियं	=	शोभा
न कुरुते	=	नहीं करती
न	=	ऐसा नहीं है (अर्थात् अत्यन्त शोभा को बढ़ा रही है)।
अहो	=	आश्चर्य है कि
भुवन	=	(समस्त) संसार के
भय	=	भय को
भङ्गव्यसनिनः	=	मूल-सहित काटने के व्यसनवाले
विकारः	=	आपके अङ्ग की नीलिमा
अपि	=	भी
श्लाघ्यः	=	प्रशंसनीय है।

भावार्थ–(कवित्त)

उठे घबराय सुरासुर-समुदाय जबै,

फैलि गई ज्वाला कालकूट की दशौ दिशान।

सारो जग तासों एक बार नाश होन लाग्यो,

आप कै कृपा-विशेष ताहि करि लीन्हों पान॥

अब लौं परो हैं तव गर में निशान कारो,
कहा सो करत नाहिं शोभा आपकी महान।
भुवन के भारी भय-भंग के करनहार,
रावरो विकारहू सराहिवे के जोग जान॥

---

(१५)

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः॥

पदच्छेद

असिद्धार्थाः, नैव, क्वचित्, अपि, सः, देवः, असुरः, नरे, निवर्तन्ते, नित्यं, जगति, जयिनः, यस्य, विशिखाः, सः, पश्यन्, ईश, त्वां, इतर, सुर, साधारणं, अभूत, स्मरः, स्मर्तव्यात्मा, न, हि, वशिषु, पथ्यः, परिभवः।

अन्वय-शब्दार्थ

ईश	=	हे नाथ !
यस्य (स्मरस्य)	=	जिस (कामदेव) के
विशिखाः	=	वाण
सदेवासुरनरे	=	देव, असुर और मनुष्यों सहित
जगति	=	जगत में
नित्यं जयिनः	=	सदा विजयशाली बने रहते हैं (और चलाये जाने पर जो वाण)
क्वचिदपि	=	कहीं से भी
असिद्धार्थाः	=	निष्फल होकर
नैव	=	नहीं
निवर्तन्ते	=	लौटते
सः	=	वह
स्मरः	=	कामदेव
त्वां	=	आपको (महादेवजी को)
इतर	=	दूसरे
सुर	=	(सामान्य) देवता के
साधारणं	=	समान
पश्यन्	=	देखता हुआ
स्मर्तव्यात्मा*	=	(केवल स्मरण करने योग्य शरीरवाला) विनष्ट†

* 'शिव-भक्तमाल', देवी खण्ड, छब्बीसवाँ रत्न।

† मधुसूदनजी ने इस प्रकार लिखा है—"स एतादृशपौरुषवानपि स्मरः

अभूत्	=	हो गया,
हि	=	क्योंकि
वशिषु	=	जितेन्द्रिय पुरुषों का
परिभवः	=	अनादर
पथ्यः	=	हितकर
न	=	नहीं होता ।

भावार्थ-(कवित्त)

जाके बाण विषम जहान बीच अर्थ निज,
साध्यो सदा जीति-जीति देवता असुर नर।
ऐसो जो प्रतापवान मदन सबै बखान,
जान्यो सो तुमहिं और देवन के पटतर ॥
कर्मफल पायो एक बार जरि छार भयो,
सुमिरन मात्र रह्यो नाम ताको भूमि पर ।
सत्य को प्रमाण मानैं सबै बुद्धिमान जन,
करिबो अनादर जितेन्द्रिय को मन्दतर ॥

यथान्ये देवा मम जय्यांस्तथाऽयमपीतीतरदेवतुल्यं त्वां पश्यन् स्मर्तव्यात्माभूत् स्मर्तव्यः स्मरणीय आत्माशरीरं यस्य स तथा नष्ट इत्यर्थः ।"

(१६)

महो पादाघाताद्‌व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्‌भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥

पदच्छेद

महो, पादाघातात्, व्रजति, सहसा, संशय, पदं, पदं, विष्णोः, भ्राम्यत्, भुज, परिघ, रुग्ण, ग्रह, गणं, मुहुः, द्यौः, दौस्थ्यं, याति, अनिभृत, जटाताडिततटा, जगत्, रक्षायै, त्वं, नटसि, ननु, वामा, एव, विभुता ।

अन्वय-शब्दार्थ

(हे ईश !)

त्वं	=	आप (तो)
जगत्	=	संसार की
रक्षायै	=	रक्षा के लिये
नटसि*	=	ताण्डव नृत्य करते हैं (पर)

* किसी महाराक्षस ने महादेवजी से ऐसा वर प्राप्त कर लिया था कि सन्ध्याकाल में मेरा बल अत्यन्त बढ़ जाया करे । वर पाकर वह सन्ध्याकाल जगत को विध्वंस करने

महो = पृथ्वी
पादाघातात् = पैर की धमक से
सहसा = एकाएक
संशय = सन्देह (के)
पदं = विषय को
व्रजति = प्राप्त हो जाती है
भुज = (आपकी घूमती हुई) बाँहरूपी
परिघ = मुद्गरों के
भ्राम्यत् = घुमाने से
ग्रहगणं = तारागण
विष्णोः पदं = आकाश लोक में
रुग्ण = पीड़ित (दुखी) होते हैं (अर्थात् उनकी गति रुक जाती है)।
द्यौः = देवलोक
अनिभृत = (आपकी) बिखरी हुई
जटा = जटा की
तटा = कोर से
ताडित = चोट खाकर
मुहुः = वारंवार
दौस्थ्यं = दुर्दशा को

की सदा चेष्टा करता रहता है। उस समय महादेवजी ताण्डव नृत्य दिखाकर उसको मोहित करते रहते हैं, जिससे वह जगत को नष्ट करने का काम भूल जाता है।

याति	=	प्राप्त होता है।
ननु	=	आश्चर्य है कि (बड़ों की)
विभुता	=	प्रभुता (अनुकूल होते हुए भी)
वामा	=	प्रतिकूल (उल्टी सी)
एव	=	प्रतीत होती है।

भावार्थ—(कवित्त)

जगत की रक्षा निज उर में विचारि जबै,
शम्भु गुणागार आप नाचिवो करत है।
पायन की ठोकर लगत भूमि-मंडल सो,
संशय-वलित अधोगति को धरत है॥
सूर आदि ग्रह होत दुखित तबै ही जबै,
बाहुरूपी परिघ आकाश में फिरत है।
जटा की चपेट तें विचल देवलोक होत,
वाम तेरी विभुता लखाइ न परत है॥

---

(१७)

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥

पदच्छेद

वियद्, व्यापी, तारा, गण, गुणित, फेनोद्गम, रुचिः, प्रवाहः, वारां, यः, पृषत, लघु, दृष्टः, शिरसि, ते, जगत्, द्वीपाकारं, जलधि, वलयं, तेन, कृतं, इति, अनेन, एव, उन्नेयं, धृतमहिम, दिव्यं, तव, वपुः।

अन्वय-शब्दार्थ

(हे भगवन्!)

वियद्	=	आकाश में
व्यापी	=	फैली हुई (और)
तारागण	=	तारागणों से
गुणित	=	बढ़ाई गई
फेनोद्गमरुचिः	=	फेन की चमकवाली
यः	=	जो
वारां प्रवाहः	=	आकाश-गंगा के जल की धारा है (वह)

ते = आपके
शिरसि = शिरपर (अर्थात् जटाजूट में)
पृषत = बूँद से भी
लघुदृष्टः = छोटी दिखाई पड़ती है।
तेन = उस
जलधिवलयं = जल-प्रवाह ने घेरकर
जगत् = जगत को
द्वीपाकारं = टापू के आकार का
कृतं = कर दिया है।
इति एव = केवल
अनेन = इसी कारण से
धृतमहिम = बड़ी भारी महिमा धारण करनेवाले
तव = आपके
दिव्यं = दिव्य (स्वच्छ)
वपुः = शरीर के महत्त्व का
उन्नेयं = अनुमान किया जा सकता है।

भावार्थ-(कवित्त)

व्योम-बीच व्याप्त तारागण रूपी फेन सह,
वारि-अवगाह को प्रवाह जो सोहात है।
मस्तक तिहारे तौन शम्भु भगवान एक,
नान्ही बूँद सरिस विलोके ठहरात है॥

जल सोई सारे भूमि-मंडल को द्वीपाकार,
सिन्धु के वलय-सम घेरे दरसात है।
महिमा महान धारी एहो त्रिपुरारी अहो,
जोग तर्किने के वा तिहारो दिव्य गात है॥

---

(१८)

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽय त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परत्रन्ता प्रभुधियः॥

पदच्छेद

रथः, क्षोणी, यन्ता, शतधृतिः, अगेन्द्रः, धनुः, अथः, रथाङ्गे, चन्द्रार्कौ, रथचरणपाणिः, शरः, इति, दिधक्षोः, ते, कः, अयं, त्रिपुर, तृण, आडम्बर, विधिः, विधेयैः, क्रीडन्त्यः, न, खलु, परतन्त्रा, प्रभुधियः।

अन्वय-शब्दार्थ

(हे प्रभो)

अथः = इसके अतिरिक्त
तृणं = तृण के समान
त्रिपुर = त्रिपुरासुर को
दिधक्षोः = जलाने के लिये
ते = आपको
अयं = यह
कः = कौन सा
आडम्बर = आडम्बर
विधिः = रचना था (क्योंकि आप तो संकल्प मात्र ही से त्रिभुवन का संहार कर सकते हैं । आपने)
क्षोणी = पृथ्वी को
रथः = रथ,
शतधृतिः = ब्रह्मा को
यन्ता = सारथी,
अगेन्द्रः = हिमाचल को
धनुः = धनुष,
चन्द्रार्कौ = चन्द्र और सूर्य को
रथाङ्गे = रथ के पहिए,

रथचरणपाणिः	=	हाथ में चक्र धारण करनेवाले विष्णु को
शरः	=	बाण (के रूप में परिणत किया) ।
खलु	=	निश्चय करके
प्रभुधियः	=	सामर्थ्यवानों की बुद्धि
विधेयैः	=	(अपने) अधीनों के साथ
क्रीडन्त्यः	=	परिहास (खेल) करती हुई
परतन्त्राः	=	पराधीन
न	=	नहीं है (किन्तु स्वतन्त्र है क्योंकि क्रीड़ा में किसी प्रयोजन आदि की अपेक्षा नहीं होती है) ।

भावार्थ—(कवित्त)

त्रिपुर-समान तृण भस्म करिबे के हेत,
　　प्रभु आप वसुधा को रथ कीन्हों निरमान ।
चन्द्र सूर्य्य चक्र चारु सारथी चतुरमुख,
　　धनु हिमवान बाण चक्रपाणि भगवान ॥
इतने अडम्बर दिगम्बर जो आप कीन्हौ,
　　कौतुक दिखायौ जग सदा यश करै गान ।
बुद्धि समरत्थ की न कहूँ परतन्त्र होति,
　　क्रीड़ा ही करत सबै काजन में परै जान ॥

भगवान विष्णु का चक्रप्रदान



हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय
पदयोर्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१६॥

(१६)

हरिस्ते साहस्त्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥*

पदच्छेद

हरिः, ते, साहस्त्रं, कमलबलिं, आधाय, पदयोः, यत्, एकोने, तस्मिन्, निजं, उदहरत्, नेत्रकमलं, गतः, भक्त्युद्रेकः, परिणतिं, असौ, चक्रवपुषा, त्रयाणां, रक्षायै, त्रिपुरहर, जागर्ति, जगताम् ।

अन्वय-शब्दार्थ

त्रिपुरहर	=	हे त्रिपुरान्तक !
हरिः	=	भगवान् विष्णु ने (नियमित पूजन करते समय)
साहस्त्रं	=	पूर्ण सहस्त्र
कमलबलिं	=	कमलों की भेंट

---

* 'शिव-भक्तमाल'—देवखण्ड, पहला रत्न ।

ते	=	आपके
पद्योः	=	चरण में
आधाय	=	चढ़ाई (उस समय भक्ति-परीक्षार्थ भगवान ने एक कमल अलक्ष्य कर दिया)।
यत्	=	जब
एकोने	=	एक कम हो गया
तस्मिन्	=	तो (उन्होंने सहस्रवें कमल की पूर्ति के लिये)
निजं	=	अपने
नेत्रकमलं	=	कमल रूपी नेत्र को
उद्हरत्	=	निकाल कर चढ़ा दिया।
असौ भक्त्युद्रेकः	=	उनकी इसी भक्ति की
गतः	=	विशेषता (अर्थात् परम सीमा ही)
चक्रवपुषा	=	सुदर्शन चक्र का रूप
परिणतिं	=	बनकर
त्रयाणां	=	तीनों
जगतां	=	लोकों की
रक्षायै	=	रक्षा के लिये
जागर्ति	=	जाग रही है (अर्थात सावधान रहती है)।

भावार्थ-(कवित्त)

तेरे पद-पूजन की उर में विचारि जबै,
विष्णु गुणागार बैठे कमल लये हजार।
एक घटि गयो ताहि पूरिवे के हेत,
निज कमल-नयन एक तुरत दयो निकार॥
ऐसी भक्ति विकट तिहारी त्रिपुरारि सोइ,
चक्रपाणि पाणि में विराजी चक्ररूप धार।
तीनौ लोक-रक्षा में सदा ही विद्यमान रहै,
जगत मँझार जाकी कीर्ति पसरी अपार॥

---

(२०)

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः॥

पदच्छेद

क्रतौ, सुप्ते, जाग्रत्, त्वं, असि, फलयोगे, क्रतुमतां, क्व, कर्म, प्रध्वस्तं, फलति, पुरुषाराधनं, ऋते, अतः, संप्रेक्ष्य, क्रतुषु, फलदान, प्रतिभुवं, श्रुतौ, श्रद्धां, बद्ध्वा, दृढ, परिकरः, कर्मसु, जनः।

अन्वय-शब्दार्थ

(हे प्रभो!)

क्रतौ	=	यज्ञ इत्यादि कर्मों के
सुप्ते	=	सो जाने (अर्थात् कारण में लीन हो जाने पर)
क्रतुमतां	=	यज्ञ करनेवालों को
फलयोगे	=	स्वर्गादिक फलसाधनों में
त्वं	=	आप
जाग्रत्*	=	जागते (सावधान)
असि	=	रहते हैं। (क्योंकि)
प्रध्वस्तं	=	नष्ट हुआ
कर्म	=	यज्ञादि कार्यक्रम

* वर्तमान काल अर्थ में विधान किये गये 'शतृ' प्रत्यय द्वारा जागने का सदा अस्तित्व कहा गया है।

पुरुषाराधनं	=	यज्ञ पुरुष के चेतन-स्वरूप फलदाता ईश्वर की आराधना किये
ऋते	=	बिना
क्व	=	किस प्रकार
फलति	=	फलदायक हो सकता है ?
अतः	=	इसलिये
त्वां	=	आपको
क्रतुषु	=	यज्ञों में
फलदानप्रतिभुवं*	=	फल देने के समय प्रतिभू (जामिन)
संप्रेक्ष्य	=	देखकर
श्रुतौ	=	वेद में
श्रद्धां	=	श्रद्धा
बद्ध्वा	=	बाँधकर (अर्थात् दृढ़ होकर)
जनः	=	मनुष्य
कर्मसु	=	कर्मों के करने में
दृढपरिकरः	=	कटिबद्ध होता है।

* "एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः।" इस परमात्मा की आज्ञा में हे गार्गि! धारण किये गये स्वर्ग और पृथ्वी स्थिर हैं।

भावार्थ—(कवित्त)

श्रद्धा अति बीच दृढ़ धारि नर आप ही को,
पुनि कर्म-फलदाता सब ही जहान मान।
विविध विधान साथ यज्ञ अनुष्ठान करै,
यदि स्वल्प कर्महूँ को ताहि बीच होय दान॥
लागत न हाथ कछु निष्फल ह्वै जात सबै,
बिना ही अराधे कर्म-पुरुष जो भगवान।
जग के सोवतहूँ में सदा आप जागे रहैं,
याते तेरी सेवा मुख्य जग बीच परै जान॥

---

(२१)

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः॥

पदच्छेद

क्रियादक्षः, दक्षः, क्रतुपतिः, अधीशः, तनुभृतां, ऋषीणां, आर्त्विज्यं, शरणद, सदस्याः, सुरगणाः, क्रतुभ्रंशः, त्वत्तः, क्रतुफल, विधानव्यसनिनः, ध्रुवं, कर्तुः, श्रद्धा, विधुरं, अभिचाराय, हि, मखाः।

अन्वय-शब्दार्थ

शरणद = हे शरणागत-रक्षक!
क्रियादक्षः = यज्ञ की क्रिया में चतुर
तनुभृतां = शरीरधारियों के
अधीशः = अधिनायक
दक्षः = दक्ष प्रजापति (स्वयं)
क्रतुपतिः = (जहाँ) यजमान थे,
ऋषीणां = (भृगु आदि त्रिकालदर्शी) ऋषि लोग (जहाँ पर)
आर्त्विज्यं = यज्ञ करानेवाले थे,
सुरगणाः = ब्रह्मादि सभी देवतागण
सदस्याः = सभासद थे, (ऐसी सब सामग्री के होने पर भी आप)
क्रतुफलविधानव्यसनिनः = स्वभाव से ही यज्ञ का फल देने वाले हो करके भी (आपकी अवज्ञा के कारण)

त्वत्तः	=	आपके द्वारा
क्रतु	=	उस यज्ञ का
भ्रंशः	=	नाश हुआ ।
हि	=	(इससे) यह
ध्रुवं	=	निश्चय है (कि)
श्रद्धाविधुरं	=	यज्ञ फल देनेवाले परमेश्वर के विषय में श्रद्धा-रहित होकर जो
मखाः	=	यज्ञ किये जाते हैं
अभिचाराय	=	वे यज्ञकर्त्ता के लिये उलटा ही फल देते हैं (अर्थात् विनाश का कारण होते हैं)।

भावार्थ—(कवित्त)

नाम दक्ष प्रजापति क्रियाहूँ में बड़े दक्ष,
जाको यज्ञपति जग कहत सबै पुकार ।
देवगण बैठे जाके संग सभासद होय,
बड़े बड़े ऋषी जहाँ होम के करनहार ॥
मख-फल-दान में व्यसन आपके समान,
तौहूँ यज्ञध्वंस भयो लागी नेकहू न बार ।
शरणद तेरे अनुराग बिन यज्ञ जो सो,
ध्रुव उलटोई फल देत यज्ञ के मँझार ॥

(२२)

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः॥ *

पदच्छेद

प्रजानाथं, नाथ, प्रसभं, अभिकं, स्वां, दुहितरं, गतं, रोहिद्भूतां, रिरमयिषुं, ऋष्यस्य, वपुषा, धनुष्पाणेः, यातं, दिवं, अपि, सपत्राकृतं, अमुं, त्रसन्तं, ते, अद्यापि, त्यजति, न, मृगव्याधरभसः।

---

* पुराण में यह प्रसिद्ध है कि देवाधिदेव महादेवजी ने ब्रह्माजी को इस प्रकार अपनी पुत्री से निन्दनीय आचरण करने में उद्यत देखकर दण्डनार्थ अपना अति व्यग्र बाण चलाया। तब ब्रह्मा लज्जित होकर 'मृगशिरः' नक्षत्र रूप हो गये। तब भगवान शङ्कर का वह बाण भी 'आर्द्रा' नक्षत्र रूप होकर उसके पिछले भाग में स्थित हो गया तथा इन दोनों नक्षत्रों के सदा समीप रहने से ऐसा कहा जाता है कि वह बाण आज तक भी अपने लक्ष्य का पीछा नहीं छोड़ता।

अन्वय-शब्दार्थ

नाथ	=	हे नाथ ! (सर्वनियामक)
धनुष्पाणेः	=	(पिनाक नामक) धनुष हाथ में लेनेवाले
ते	=	आपका
मृगव्याधरभसः	=	शिकारी के उत्साह के समान वह उत्साह,
रोहिद्भूतां	=	मृगी का रूप धरनेवाली
स्वां	=	अपनी
दुहितरं	=	पुत्री के (पीछे)
ऋष्यस्य	=	मृग का रूप धारण कर
प्रसभं	=	बलपूर्वक (हठपूर्वक)
रिरमयिषुं	=	रमण करने की इच्छा से
गतं	=	गये हुए
अभिकं	=	काम से पीड़ित होकर
दिवं	=	स्वर्ग तक
यातं अपि	=	जाने पर भी
सपत्राकृत	=	अति व्यग्र आपका बाण मानों शरीर में घुसना ही चाहता है (इस भय से)
त्रसन्तं	=	भयभीत हुए
अमुं	=	ऐसे

प्रजानाथं	=	ब्रह्मा का (पीछा)
अद्यापि	=	अभी तक
न	=	नहीं
त्यजति	=	छोड़ता है।

भावार्थ-(कवित्त)

स्वामी प्रजागण के विरंचि अति कामी निज,
दुहिता पै धाये कामातुर होय एक बार।
मृगी होय भागी ताके पीछे मृग रूप भये,
तासों व्यभिचार कियो चाहत बलातकार॥
आप ततकाल नाथ हाथ धनु बाण लिये,
व्याधा रूप धारि दंड दैवे को भये तयार।
व्याकुल ह्वै भागे शर साथ लागि गये स्वर्ग,
तबहूँ अभागे भय छाड़त नहीं पिछार॥

---

(२३)

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणव-
त्पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥

पदच्छेद

स्व, लावण्य, आशंसा, धृत, धनुषं, अह्नाय, तृणवत्, पुरः, प्लुष्टं, दृष्ट्वा, पुरमथन, पुष्प, आयुधं, अपि, यदि, स्त्रैणं, देवी, यम, निरत, देह, अर्ध, घटनात्, अवैति, त्वां, अद्धा, बत, वरद, मुग्धाः, युवतयः ।

अन्वय-शब्दार्थ

पुरमथन	=	हे त्रिपुरासुर-दाहक !
स्व	=	पार्वतीजी की
लावण्य	=	सुन्दरता की
आशंसा	=	आशा के भरोसे
धृतधनुषं	=	धनुष धारण करनेवाले
पुष्पायुधं	=	पुष्पधन्वा कामदेव को

अह्वाय	=	तुरन्त
पुरः	=	अपने सामने
तृणवत्	=	सूखे हुए तिनकों के समान
प्लुष्टं	=	भस्म होते हुए
दृष्ट्वा	=	देखकर
अपि	=	भी
देवी यमनिरत-देहार्धघटनात्*	=	स्वयं भगवती पार्वतीजी यम, नियम, आसन इत्यादि में तत्पर रहनेवाले शरीर में आधा बना लेने से
त्वां	=	आपको
यदि	=	जो
स्त्रैणं	=	स्त्री में आसक्त
अवैति	=	जानती हैं
अद्धा	=	तो ठीक ही है
वरद युवतयः	=	हे वर देनेवाले ! स्त्रियाँ
मुग्धाः	=	सीधी सादी होती हैं

---

* आपने (शिवजी ने) इस विचार से कि इस पार्वती ने चिरकाल तक मेरे लिये तप किया है, यह विरह दुःख को प्राप्त न हो, (इसी लिये) करुणा करके उन्हें अपनी देह का आधा भाग बनाकर अपने शरीर में स्थापित किया है ।

भावार्थ—(कवित्त)

एहो त्रिपुरारि देखि उमा शैलराज-सुता,
अपनी लुनाई को सु जाको अति अभिमान ।
मारी धनुधारी पुष्पशरहूँ को तृण-सम,
भस्म भये देख्यौ तौहूँ मोह को न अवसान ॥
आप जौन ताहि आधे अंग करि मान्यौ यातें,
आप ऐसे जोगीहू को जान्यो विषयी महान ।
बूझिवो या भाँति पछितान की है बात, भोली
युवती की जाति सुनी जाति सत्य या जहान ॥

---

(२४)

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥

पदच्छेद

श्मशानेषु, आक्रीडा, स्मरहर, पिशाचाः, सहचराः, चिताभस्म, आलेपः, स्रक्, अपि, नृकरोटी, परिकरः, अमङ्गल्यं, शीलं, तव, भवतु, नाम, एवं, अखिलं, तथापि, स्मर्तृणां, वरद, परमं, मङ्गलं, असि ।

अन्वय-शब्दार्थ

स्मरहर	=	हे कामारि ! (हे मदन-दहन !)
श्मशानेषु	=	मरघटों में
आक्रीडा	=	क्रीड़ा करना,
पिशाचाः	=	पिशाचों के
सहचराः	=	साथ रहना,
चिताभस्म	=	चिता की भस्म
आलेपः	=	लगाना (और)
नृकरोटी	=	नरमुण्डों की
स्रक्	=	माला पहीनना
अपि	=	निश्चय
परिकरः	=	(आपकी) सामग्री है ।
वरद	=	हे वर देनेवाले !
तव	=	आपका
अखिलं	=	सम्पूर्ण

शीलं	=	(स्वभाव) चरित्र
अमङ्गल्यं	=	अमङ्गल (मङ्गल से विपरीत)
भवतु	=	भी रहे
तथापि	=	तो भी (आपका)
नाम	=	नाम
एवं	=	सदैव
स्मर्तॄणां	=	स्मरण करनेवाले को
परमं	=	अतिशय
मङ्गलं	=	कल्याण रूप (ही)
असि	=	है।

भावार्थ-(कवित्त)

जैसियै गले के बीच सोहत कपाल-माल,
चिताभस्म अंग में सु तैसियै लसत है।
एहो मदनारी इतनीई सौंज है तिहारी,
भेष जो पै सूचक अमंगल धरत है॥
नित्य वरदायक सु वास मरघट नीको,
साथी सहवासी भूत प्रेत तौ रहत है।
तौहूं तेरो नाम* जो रटत है सुदाम ताको,
मंगल तमाम जग-काम सुधरत है॥

* जिसकी लौ हर से लगी वह जग में निर्भय हो गया।

(२५)

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥

पदच्छेद

मनः, प्रत्यक्, चित्ते, सविधं, अवधाय, आत्तमरुतः, प्रहृष्यद्रोमाणः, प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः, यत्, आलोक्य, आह्लादं, ह्रदे, इव, निमज्य, अमृतमये, दधति, अन्तः, तत्त्वं, किमपि, यमिनः, तत्, किल, भवान् ।

अन्वय-शब्दार्थ

हे वरद !

प्रत्यक्चित्ते *	=	अन्तर्हृदय में
मनः	=	संकल्प-विकल्पात्मक मन को
सविधं	=	विधिपूर्वक
अवधाय	=	एकाग्र (वृत्ति-शून्य) करके

* विषयों से इन्द्रियों का हटना रूप प्रत्याहार 'प्रत्यक्' पद से कहा गया है तथा प्रत्यक् का एक ही विषय में प्रवाह 'ध्यान' कहलाता है ।

आत्तमरुतः = पूरक, रेचक, कुम्भकादि प्राणायाम को करनेवाले
प्रहृष्यद्रोमाणः = इसी कारण से (अत्यन्त पुलकिताङ्ग) विशेष रोमाञ्चित होकर
प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः = अश्रुपूर्ण नेत्रवाले और अत्यन्त हर्ष से
यमिनः * = यम, नियम, शम, दम इत्यादि से युक्त योगी (परमहंस) लोग
यत् = जिस किसी अशक्य सच्चिदानन्दमय
किमपि = (किसी अज्ञात विषय) अपूर्व तत्त्व (वस्तु) को
अन्तः = अपने अन्तःकरण में
आलोक्य = ज्ञानचक्षु से देखकर
अमृतमये = परमानन्द रूप अमृत से पूर्ण
ह्रदे = सरोवर में
निमज्य इव † = मानो गोता लगाकर (बाह्य सुख से विलक्षण पहले ही से विद्यमान)

---

* यम, नियमासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधयोऽष्टावङ्गानि।

† जिस सुख के लेश मात्र का भी स्पर्श करके पुरुष सकल सन्तापों से रहित होकर परम शान्ति सुख प्राप्त करते हैं, उसके निमज्जन (गोता लगाने) रूप सर्वाङ्ग-संयोग से जो आनन्द होता है उसका तो कहना ही क्या है। यद्यपि उत्कृष्ट ब्रह्मानन्द का कोई दृष्टान्त नहीं है तथापि थोड़े से सादृश्य से भी लोगों की बुद्धि की दृढ़ता के लिये ऐसा कहा गया है।

आह्लादं = अनिर्वाच्य (निरतिशय *) सुख को
दधति = धारण करते अर्थात् प्राप्त होते हैं। (वह सुख नित्य होने के कारण उत्पादन करने योग्य नहीं है, अतः धारण करना ही कहा गया है)
तत् तत्त्वं = वह प्रसिद्ध तत्त्व अर्थात् परमात्मा
भवान् किल = आप ही हैं।

भावार्थ–(कवित्त)

आसन अचल पै सुखासन लगाय बैठे,
बने योग-आसन योगीश जो कहावते।
स्वाँस को निरोध किये रोम हर्ष जाहि भयो,
प्रेम-अम्बुधार नैन-अम्बुज बहावते॥
मन को लगाय आतमा में उर भीतर ही,
अकथ जु तत्व ताहि देखि सुख पावते।
अमिय सरोवर में मज्जि ज्यों प्रसन्न होत,
सोई तत्व आप निहसंक वेद गावते॥

---

* निर्गतः अतिशयः अस्मात् = अतिशून्य, परमोत्कृष्ट। 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म', 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्', 'एष एव परम आनन्दः', 'यो वै भूमा तत्सुखं', 'कोह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्'।

(२६)

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि॥

पदच्छेद

त्वं, अर्कः, त्वं, सोमः, त्वं, असि, पवनः, त्वं, हुतवहः, त्वं, आपः, त्वं, व्योम, त्वं, उ, धरणिः, आत्मा, त्वं, इति, च, परिच्छिन्नां, एवं, त्वयि, परिणताः, बिभ्रतु, गिरं, न, विद्मः, तत्, तत्त्वं, वयं, इह, तु, यत्, त्वं, न, भवसि।

अन्वय-शब्दार्थ

(हे शंकर)

त्वं अर्कः	=	आप सूर्य हैं,
त्वं सोमः	=	आप चन्द्रमा
असि	=	हैं,
त्वं पवनः	=	आप पवन (हैं),
त्वं हुतवहः	=	आप अग्नि (हैं),
त्वं आपः	=	आप जल (हैं),

त्वं व्योम	=	आप आकाश (हैं),
त्वमु धरणिः	=	आप ही पृथ्वी (हैं)
च	=	और
त्वं आत्मा	=	आप ही आत्मा हैं।
इति	=	इस प्रकार
परिणताः	=	आपके स्वरूप को जाननेवाले
त्वयि	=	आपके विषय में
एवं	=	इस प्रकार से,
परिछिन्नां	=	भिन्न-भिन्न
गिरं	=	वाणी
बिभ्रतु	=	कहते रहें
तु	=	पर
वयं	=	हम लोग तो
इह	=	इस संसार में
तत् तत्त्वं	=	उस वस्तु को (अर्थात् ऐसा कोई तत्त्व)
न	=	नहीं
विद्मः	=	जानते
यत्	=	जो (वास्तव में)
त्वं	=	आप
न	=	न
भवसि	=	हों।

भावार्थ—(कवित्त)

आप ही हौ सूर्य सोमआप ही पवन व्योम,
आप ही को जल थल अचल कै मानहीं।
आप ही प्रतापवान अग्नि ह्वै विराजमान,
आप ही को आतमा शरीर-व्यापी जानहीं।
एतनेई माँह है विचार-बुद्धि दृढ़ जाकी,
आपको सो याही भाँति पृथक बखानहीं।
पर हमैं ऐसी कोई वस्तु न परति जानि,
शम्भु भगवान अहो आप जौन ठाँ नहीं।

---

(२७)

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तव्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्॥

पदच्छेद

त्रयीं, तिस्रः, वृत्तीः, त्रिभुवनं, अथो, त्रीन्, अपि, सुरान्, अकाराद्यैः, वर्णैः, त्रिभिः, अभिदधत्, तीर्णविकृति, तुरीयं, ते, धाम, ध्वनिभिः, अवरुन्धानं, अणुभिः, समस्त, व्यस्तं, त्वां, शरणद, गृणाति, ओम्, इति, पदम्, ।

अन्वय-शब्दार्थ

शरणद	=	हे आर्त जनों को शरण देनेवाले ! (ओम् जो)
त्रयीं	=	तीनों वेद है (ऋक्, यजु, साम),
तिस्रो वृत्तीः	=	तीनों अवस्था है (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति),
त्रिभुवनं	=	तीनों लोक है (भूः, भुवः, स्वः)
अथो	=	और
त्रीन् सुरान्	=	तीनों देवता है (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)
अपि	=	ऐसा
त्रिभिः	=	तीन प्रकार के
अकाराद्यैः	=	अकार आदि (अ, उ, म्)
वर्णैः	=	अक्षरों से
अभिदधत्	=	कहता हुआ अर्थात् प्रतिपादन करता हुआ
तीर्णविकृति	=	निर्विकार तीनों अवस्थाओं से परे
ते	=	आपके
तुरीयं धाम	=	तुरीय (चौथे) धाम में (चैतन्य स्वरूप)

अणुभिः = सूक्ष्म
ध्वनिभिः = ध्वनि से
अवरुन्धानं = व्याप्त होकर
समस्तव्यस्तं = समस्त रूप में
ओम् = ओम् (अ, उ, म्)
इति = यह } अर्थात् 'ओम्' भी
पदं = पद }
त्वां = आपकी
गृणाति = स्तुति करता है अर्थात् आपका ही वर्णन करता है

भावार्थ-(कवित्त)

अहो शरणद ओम् पद मूलमंत्र जोई,
जाहि के महान गुण जग यों करै बखान।
तीन वेद तीन वृत्ति तीन लोक तीन देव,
वर्ण तीनहूं अकार आदि जेते सबै जान।
सबके प्रकाश को करनहारो ओमकार,
व्यस्त औ समस्त को बिसारि सारो अभिमान।
आप जो तुरीया अवछिन्न हो चतुर्थ धाम,
ताके गुणग्राम मन्द स्वर तें करत मान।

---

(२८)

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥

पदच्छेद

भवः, शर्वः, रुद्रः, पशुपतिः, अथ, उग्रः, सह, महान्, तथा, भीम, ईशानौ, इति, यत्, अभिधानाष्टकं, इदं, अमुष्मिन्, प्रत्येकं, प्रविचरति, देव, श्रुतिः, अपि, प्रियाय, अस्मै, धाम्ने, प्रणिहितनमस्यः, अस्मि, भवते ।

अन्वय-शब्दार्थ

देव	=	हे देवाधिदेव !
भवः	=	उत्पत्तिकर्त्ता,
शर्वः	=	नाशकर्त्ता,
रुद्रः	=	रुलानेवाला (भीषण),
पशुपतिः	=	जीवों के पालक
अथ	=	एवं
उग्रः	=	उग्र (क्रोधकर्त्ता)
सहमहान्	=	महादेव
तथा	=	और

भीम	=	भयंकर
ईशानौ	=	ऐश्वर्यवान
इति	=	यह
यत्	=	जो
अभिधानाष्टकं इदं	=	आपके आठ नाम हैं
असुष्मिन्	=	इनमें से
प्रत्येकं	=	हर एक का
श्रुति	=	वेदशास्त्र
अपि	=	भी
प्रविचरति	=	वर्णन करते हैं (जिस प्रकार श्रुति प्रणव का बोध कराती है उसी प्रकार इन आठ नामों का भी वर्णन करती है)
अस्मै	=	ऐसे (परम इष्ट)
प्रियाय धाम्ने भवते	=	तेजोरूप स्वयंप्रकाश आपको
प्रणिहितनमस्यः	=	प्रणाम
अस्मि	=	करता हूँ।

भावार्थ-(कवित्त)

भव शर्व रुद्र पशुपति उग्र महादेव,

भीम औ ईशान अष्ट नाम जे तेरे उदार।

नाम तिन आठन के गुणग्राम आठो याम,

आपकी प्रसन्नता निमित्त गावै श्रुति चार ॥

एहो सर्वदेवन के देव उक्त नाम युक्त,
तेजमै स्वयंप्रकाश है स्वरूप जो तिहार।
ताहि बारबार निज हाथ जोरि छल छाँडि,
दासन को दास यह करत नमसकार ॥

---

(२६)

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥

पदच्छेद

नमः, नेदिष्ठाय, प्रियदव, दविष्ठाय, च, नमः, नमः, क्षोदिष्ठाय, स्मरहर, महिष्ठाय, च, नमः, नमः, वर्षिष्ठाय, त्रिनयन, यविष्ठाय, च, नमः, नमः, सर्वस्मै, ते, तत्, इदं, इति, शर्वाय, च, नमः।

अन्वय—शब्दार्थ

प्रियदव	=	हे आनन्दकानन-विहारिन् !
स्मरहर	=	हे कामारि !
त्रिनयन	=	हे त्रिलोचन !
नेदिष्ठाय	=	अत्यन्त निकट रहनेवाले
नमः	=	(आपको) नमस्कार है
दविष्ठाय *	=	दूर से दूर रहनेवाले
नमः	=	(आपको) नमस्कार है
क्षोदिष्ठाय †	=	अत्यन्त लघु रूपवाले (आपको)
नमः	=	नमस्कार है
च	=	और
महिष्ठाय †	=	बड़े से बड़े रूपवाले
नमः	=	(आपको) नमस्कार है ।
वर्षिष्ठाय ‡	=	अतिशय वृद्ध (आपको)
नमः	=	नमस्कार है
च	=	और
यविष्ठाय	=	परम तरुण
नमः	=	(आपको) नमस्कार है ।

---

* दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च ।

† अणोरणीयान्महतो महीयान् ।

‡ त्वं स्त्री पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी, त्वं जीर्णो दण्डेनाञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ।

सर्वस्मै	=	सर्व रूपधारी
ते	=	आपको
नमः	=	नमस्कार है
च	=	और
तत्	=	(परोक्ष) ब्रह्म (तथा)
इदं	=	(परोक्ष) आत्मा
इति	=	इस तरह (आप)
शर्वाय	=	शिव को
नमः	=	नमस्कार है।

भावार्थ—(छप्पय)

नमस्कार प्रभु निकट, दूरवर्ती प्रियदव हर!
नमस्कार कामारि, सूक्ष्म अरु थूल रूपधर।
नमस्कार प्रभु वृद्ध रूपधारी, त्रयलोचन।
नमस्कार पुनि तुमहिं, तरुण तनधर भयमोचन।
नमस्कार सब भाँति तें, तोहिं करौं अघहरहरन।
सर्व-स्वरूपी आप हौ, महादेव अशरणशरण॥

---

(३०)

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥

पदच्छेद

बहलरजसे, विश्वोत्पत्तौ, भवाय, नमः, नमः, प्रबल-तमसे, तत्, संहारे, हराय, नमः, नमः, जनसुखकृते, सत्त्वोद्रिक्तौ, मृडाय, नमः, नमः, प्रमहसि, पदे, निस्त्रैगुण्ये, शिवाय, नमः, नमः ।

अन्वय-शब्दार्थ

(हे भगवन् !)

विश्वोत्पत्तौ	=	संसार की उत्पत्ति के समय
बहलरजसे	=	बहुत रजोगुण के साथ
भवाय	=	भव रूप (आपको)
नमो नमः	=	बारंबार नमस्कार है ।
तत्	=	उस (संसार) के
संहारे	=	नाश के समय
प्रबलतमसे	=	बहुत तमोगुण के साथ,

हराय	=	हर रूप
नमो नमः	=	(आप) को वारंवार नमस्कार है।
सत्त्वोद्रिक्तौ	=	सत्त्वगुण की उत्पत्ति के समय (जगत के पालन के समय)
जनसुखकृते	=	भक्तों का हित करनेवाले
मृडाय	=	मृड (विष्णु) रूप (आपको)
नमो नमः	=	वारंवार नमस्कार है।
प्रमहसि	=	बड़े भारी तेज के
पदे	=	स्थान
निस्त्रैगुण्ये	=	तीनों गुणों से परे
शिवाय	=	स्वयं प्रकाश-स्वरूप शिव (आप) को
नमो नमः	=	वारंवार नमस्कार है।

भावार्थ—(छप्पय)

अधिक रजोगुण सहित, आप जब जगत रचत हैं।
नमस्कार भवरूप आप, तिहि काल धरत हैं॥
जग-सँहार जब करत आप महँ रहत प्रबल तम।
हरस्वरूप तब धरत ताहि प्रति नमस्कार मम॥
नमस्कार सुखरूप तुम, जन-सुखकर हौ गुण-सहित।
नमस्कार पद महत युत, शिव-स्वरूप त्रय-गुण-रहित॥

---

(३१)

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥

पदच्छेद

कृशपरिणति, चेतः, क्लेशवश्यं, क्व, च, इदं, क्व, च, तव, गुणसीमोल्लङ्घिनी, शश्वत्, ऋद्धिः, इति, चकितं, अमन्दीकृत्य, मां, भक्तिः, आधात्, वरद, चरणयोः, ते, वाक्य, पुष्पोपहारम् ।

अन्वय-शब्दार्थ

वरद	=	हे वर देनेवाले !
क्लेशवश्यं	=	अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि क्लेशों के वश में रहकर*
कृशपरिणति	=	अन्त में दुर्बल (आपके गुण-वर्णन में अत्यन्त असमर्थ)
इदं	=	यह

* अथवा बड़े क्लेश से वश में होनेवाला ।

चेतः	=	मेरा चित्त
क्व	=	कहाँ
च	=	और
गुणसीमोल्लंघिनी	=	गुणों की संख्या और परिमाण की सीमा का उल्लंघन करनेवाली
तव	=	आपकी
शश्वत्	=	सनातन
ऋद्धिः	=	महिमा
क्व	=	कहाँ !
इति	=	इस प्रकार
चकितं	=	चकित होनेवाले (मेरे लिये यह अत्यन्त असम्भावना ही भय का हेतु है)।
मां	=	मुझको
भक्तिः	=	भक्ति ने ही
अमन्दीकृत्य	=	उत्साहित करके
ते	=	आपके
चरणयोः	=	चरणों में
वाक्य	=	वाक्यरूपी
पुष्पोपहारं	=	पुष्पों का उपहार
आधात्	=	अर्पित कराया है ।

भावार्थ-(मालिनी)

कहँ कृश मति दीना क्लेश-क्षीणा य मेरी।
कहँ गुण-गण सीमोल्लंघिनी ऋद्धि तेरी॥
चकित हम पुरारी भक्ति ही के निहारे।
पद पर सुमनों से वाक्य रक्खें तिहारे॥

---

(३२)

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

पदच्छेद

असित, गिरि, समं, स्यात्, कज्जलं, सिन्धु, पात्रे, सुरतरु, वर, शाखा, लेखनी, पत्रं, उर्वी, लिखति, यदि, गृहीत्वा, शारदा, सर्वकालं, तदपि, तव, गुणानां, ईश, पारं, न, याति।

अन्वय-शब्दार्थ

ईश	=	हे ईश! (सर्वसमर्थ)
सिन्धुपात्रे	=	समुद्ररूपी पात्र में
असितगिरि	=	नील पर्वत के
समं	=	बराबर
कज्जलं	=	काजल (स्याही)
स्यात्	=	हो,
सुरतरु	=	कल्पवृक्ष की
वर	=	सुन्दर
शाखा	=	शाखा (डाल) की
लेखनी	=	कलम
स्यात्	=	हो,
यदि	=	यदि
शारदा	=	(स्वयं) सरस्वती देवी
उर्वी पत्रं	=	पृथ्वीरूपी कागज
गृहीत्वा	=	लेकर
सर्वकालं	=	सब काल तक
लिखति	=	लिखा करें
तदपि	=	तब भी
तव	=	आपके
गुणानां	=	गुणों का

पारं	=	पार
न	=	नहीं
याति	=	पा सकतीं।

भावार्थ—(मालिनी)

गिरिवर अति कारो की वनै जो सियाही।
जलनिधि मसिदानी पत्र हो भूमि या ही॥
कलम सुरलता की शारदा ले सदा ही।
तव गुण लिखिवे कों पारलागै न ताही॥

---

(३३)

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार॥

पदच्छेद

असुरसुरमुनीन्द्रैः, अर्चितस्य, इन्दुमौलेः, ग्रथितगुण-महिम्नः, निर्गुणस्य, ईश्वरस्य, सकलगणवरिष्ठः, पुष्पदन्ता-भिधानः, रुचिरं, अलघुवृत्तैः, स्तोत्रं, एतत्, चकार।

अन्वय-शब्दार्थ

सकलगणवरिष्ठः = सब गणों में परम श्रेष्ठ
पुष्पदन्ताभिधानः = पुष्पदन्ताचार्य ने यह सुन्दर स्तोत्र
असुरसुरमुनीन्द्रैः = देवता, दानव और बड़े-बड़े मुनियों से
अर्चितस्य = पूजित
इन्दुमौलेः = चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने-वाले और
ग्रथितगुणमहिम्नः = जिनके गुणों की महिमा विख्यात है उन
निर्गुणस्य = निर्गुण रूप
ईश्वरस्य = श्रीशिवजी का
एतत् = यह
रुचिरं = सुन्दर
स्तोत्रं = स्तोत्र
अलघुवृत्तैः = बड़े-बड़े छन्दों में
चकार = बनाया।*

भावार्थ-(मालिनी)

असुर सुर मुनीशा जाहि शीशा नवावैं।
सगुण निगुण रूपी चन्द्रमौली कहावैं॥
तिन कर वर स्तोत्रै छन्द भारी बनावै।
सब गणमणिमन्ता पुष्पदन्ता सुनावै॥

* इस श्लोक से लेकर चालीसवें श्लोक तक उपसंहार है।

(३४)

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेत-
त्पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥

पदच्छेद

अहरहः, अनवद्यं, धूर्जटेः, स्तोत्रं, एतत्, पठति, परमभक्त्या, शुद्धचित्तः, पुमान्, यः, सः, भवति, शिव-लोके, रुद्रतुल्यः, तथा, अत्र, प्रचुरतर, धन, आयुः, पुत्रवान्, कीर्तिमान्, च ।

अन्वय-शब्दार्थ

यः	=	जो
पुमान्	=	मनुष्य
शुद्धचित्तः	=	शुद्ध चित्त से
धूर्जटेः	=	शिवजी के
एतत्	=	इस
अनवद्यं	=	सुन्दर
स्तोत्रं	=	स्तोत्र को
अहरहः	=	प्रतिदिन

परमभक्त्या	=	परम भक्ति से
पठति	=	पढ़ता है,
सः	=	वह
शिवलोके	=	शिवलोक में
रुद्रतुल्यः	=	रुद्र (नामक मुख्य शिव के) समान हो जाता है
तथा	=	और
अत्र	=	यहाँ (संसार में)
प्रचुरतर	=	बहुत
धन,आयुः, पुत्रवान्	=	धन, आयु और पुत्रवाला
च	=	तथा
कीर्तिमान् भवति	=	यशस्वी हो जाता है ।

भावार्थ—(मालिनी)

स्तव यह शिव को शुद्ध मन से पढ़ेंगे ।
अरु सतत भगति जो धूर्जटी की करेंगे ॥
धर शिव-तनु को ते शम्भु लोकै बसैंगे ।
धन जन यश आयू पुत्र ताके बढ़ैंगे ॥

---

(३५)

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं होमयागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

पदच्छेद

दीक्षा, दानं, तपः, तीर्थं, होम, यागादिकाः, क्रियाः, महिम्न, स्तव, पाठस्य, कलां, न, अर्हन्ति, षोडशीम् ।

अन्वय-शब्दार्थ

दीक्षा	=	दीक्षा,
दानं	=	दान,
तपः	=	तप,
तीर्थं	=	तीर्थ,
होम	=	होम और
यागादिकाः	=	यज्ञादिक
क्रियाः	=	कर्म
महिम्नस्तव	=	महिम्नस्तोत्र के
पाठस्य	=	पाठ के
षोडशीं कलां	=	सोलहवें भाग के बराबर भी
न अर्हन्ति	=	नहीं हो सकते ।

भावार्थ-(दोहा)

दान होम दीक्षा तपरु, मख तीरथ फल जोय ।
पाठ महिम्न-स्तोत्र के, षोडश भाग न सोय ॥

---

(३६)

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं शिवमीश्वरवर्णनम्।
अनौपम्यं मनोहारि पुण्यं गन्धर्वभाषितम्॥

पदच्छेद

आसमाप्तं, इदं, स्तोत्रं, शिवं, ईश्वर, वर्णनं, अनौपम्यं, मनोहारि, पुण्यं, गन्धर्व, भाषितम्।

अन्वय-शब्दार्थ

पुण्यं	=	पवित्र
अनौपम्यं	=	उपमारहित (अनुपमेय)
मनोहारि	=	मनोहर
शिवं	=	मङ्गलदायक
ईश्वरवर्णनं	=	शिवजी के वर्णन सहित
गन्धर्व	=	गन्धर्वराज द्वारा
भाषित	=	कहा गया
इदं	=	यह
स्तोत्रं	=	स्तोत्र
आसमाप्तम्	=	समाप्त हुआ।

भावार्थ-(दोहा)

भो समाप्त यह मनहरन, ईश-स्तव सु पुनीत।
पुष्पदन्त गन्धर्व कर, अतिहि अनूप प्रणीत॥

(३७)

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो* नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥

पदच्छेद

महेशात्, न, अपरः, देवः, महिम्नः, न, अपरा, स्तुतिः, अघोरात्, अपरः, मन्त्रः, न, अस्ति, तत्त्वं, गुरोः, परम् ।

अन्वय-शब्दार्थ

महेशात्	=	भगवान् महेश्वर से भिन्न (बढ़कर)
अपरः	=	कोई दूसरा
देवः	=	देवता
न	=	नहीं है।
महिम्नः	=	महिम्न-स्तोत्र से
अपरा	=	भिन्न दूसरा (बढ़कर)
स्तुतिः	=	स्तुति
न	=	नहीं है।
अघोरात्	=	अघोर से बढ़कर
अपरः	=	दूसरा

* ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
शर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

मन्त्रः	=	मन्त्र
न	=	नहीं है।
गुरोः	=	गुरु के सिवाय
परं	=	दूसरा
तत्त्वं	=	तत्त्व
न	=	नहीं
अस्ति	=	है (देवताओं में श्रीशिवजी और स्तोत्रों में महिम्न सबसे परे हैं)।

भावार्थ-(दोहा)

नहिं महिम्न सो स्तोत्र पर, देव न शम्भु-समान।
नहिं अघोर सो मन्त्र कोउ, तत्व न गुरु सो आन॥

---

(३८)

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा-
त्स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः॥❀

❀ गन्धर्वराज के इस उपाख्यान को 'शिव-भक्तमाल' पूर्वार्द्ध के 'यच-खण्ड' में देखिये।

पदच्छेद

कुसुमदशन, नामा, सर्व, गन्धर्वराजः, शशिधर, वर, मौलेः, देवदेवस्य, दासः, सः, खलु, निजमहिम्नः, भ्रष्टः, एव, अस्य, रोषात्, स्तवनं, इदं, अकार्षीत्, दिव्यदिव्यं, महिम्नः ।

अन्वय-शब्दार्थ

शशिधरवरमौलेः	=	चन्द्र को मस्तक पर धारण करनेवाले
देवदेवस्य दासः	=	देवों के देव महादेवजी का दास
सर्वगन्धर्वराजः	=	समस्त गन्धर्वों का राजा
सः	=	जो
कुसुमदशननामा	=	कवि पुष्पदन्त नामक है उसने
अस्य	=	इन्हीं
रोषात्	=	(शिवजी) के रोष से
निजमहिम्नः	=	अपनी महिमा से
भ्रष्टः	=	च्युत होकर (भ्रष्ट होकर)
इदं	=	इस
दिव्यदिव्यं	=	परम दिव्य
महिम्नः स्तवनं	=	महिम्नस्तोत्र को
खलु	=	निश्चयपूर्वक
अकार्षीत्	=	बनाया ।

भावार्थ–(मालिनी)

शिव कर वर दासा सर्वगन्धर्व-राजा।
कुसुमदशन नामा देव के लोक आजा॥
जब निज पदवी तें भ्रष्ट भो शम्भु रोषा।
नर-तन धरि गायो सो महिम्नः अनोखा॥

---

(३९)

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम्॥

पदच्छेद

सुरवर, मुनि, पूज्यं, स्वर्ग, मोक्षैक, हेतुं, पठति, यदि, मनुष्यः, प्राञ्जलिः, नान्यचेताः, व्रजति, शिव, समीपं, किन्नरैः, स्तूयमानः, स्तवनं, इदं, अमोघं, पुष्पदन्त, प्रणीतम्।

अन्वय-शब्दार्थ

यदि	=	यदि
मनुष्यः	=	मनुष्य
प्राञ्जलिः	=	हाथ जोड़कर
नान्यचेताः	=	एकाग्र चित्त से
सुरवरमुनिपूज्यं	=	बड़े-बड़े देवताओं और मुनियों से पूजित
स्वर्गमोक्षैकहेतुं	=	स्वर्ग और मोक्ष के देनेवाले
पुष्पदन्तप्रणीतं	=	पुष्पदन्त के रचे हुए
अमोघं	=	फलदायक
इदं	=	इस
स्तवनं	=	स्तोत्र को
पठति	=	पढ़ता है (तो)
किन्नरैः	=	किन्नरों द्वारा
स्तूयमानः	=	स्तुति किया जाता हुआ
शिव	=	शिवजी के
समीपं	=	पास
व्रजति	=	जाता है ।

भावार्थ-(मालिनी)

सुरवर मुनिहूँ सों पूज्य औ मुक्ति-हेतू ।
स्तव यह अति भारी सिन्धु-संसार-सेतू ॥

जन दुहुँ कर जोरे पाठ को जो करैंगे।
शिवपुर ध्रुव जाके सो सुखी हो रहैंगे॥

---

(४०)

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः॥

पदच्छेद

श्रीपुष्पदन्त, मुखपङ्कज, निर्गतेन, स्तोत्रेण, किल्विष-हरेण, हरप्रियेण, कण्ठस्थितेन, पठितेन, समाहितेन, सुप्रीणितो, भवति, भूतपतिः, महेशः।

अन्वय-शब्दार्थ

श्रीपुष्पदन्त	=	श्रीपुष्पदन्ताचार्य के
मुखपङ्कज	=	मुखकमल से
निर्गतेन	=	निकले हुए
किल्विषहरेण	=	पाप के हरनेवाले

हरप्रियेण	=	शिवजी के प्यारे
स्तोत्रेण	=	इस स्तोत्र का
समाहितेन	=	ध्यानयुक्त होकर और
कण्ठस्थितेन	=	कण्ठस्थ करके
पठितेन	=	पाठ करने से
भूतपतिर्महेशः	=	भूतनाथ श्रीमहादेवजी
सुप्रीणितः	=	अति प्रसन्न
भवति	=	होते हैं।

भावार्थ—(त्रिभङ्गी)

कलि-कलुष-विदारण कष्ट-निवारण
स्तव यह सब सुख सारो।
श्रीपुष्पदन्त कर मुख-पंकज वर,
है निर्गत शिव-प्यारो॥
कण्ठाग्र करै जो चित्त धरै जो,
पाठ याहि नितप्रति करिहै।
तापै प्रसन्न अति शम्भु भूतपति,
सबै भाँति रहि भय टरिहै॥

अन्तिम प्रार्थना



(४१)

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥

अर्थ

यह वाणीरूपी पूजा हमने श्रीशंकरजी के चरणों में भेंट की है, इससे देवों के देव श्रीमहादेवजी मेरे ऊपर प्रसन्न हों।

(४२)

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥

अर्थ

हे महेश्वर! मैं आपके भेद को नहीं जानता कि आप कैसे हैं, हे शंकर! आप जैसे हों वैसे ही आपको बारबार प्रणाम है।

(४३)

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥

अर्थ

जो मनुष्य एक बार, दो बार या तीन बार इस (स्तोत्र) को पढ़ता है, वह सब पापों से छूटकर शिवलोक को प्राप्त होता है ।

इति श्रीपुष्पदन्ताचार्यविरचितं शिवमहिम्नस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।



नमः शिवाय शान्ताय सर्वज्ञाय शुभात्मने ।
जगदानन्दकन्दाय परमानन्दहेतवे ॥
अरूपाय सरूपाय नानारूपधराय च ।
विरूपाक्षाय विधये विधिविष्णुस्तुताय च ॥

समाप्तं शुभं भूयात् ।



